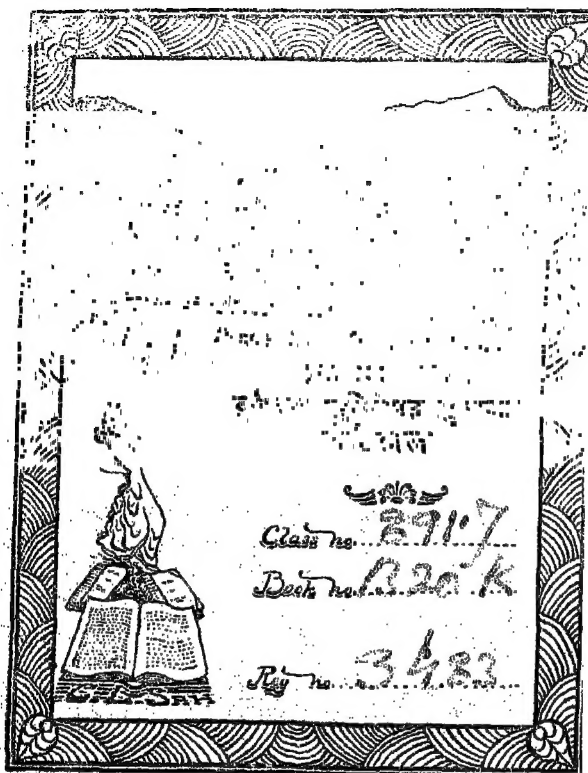

G. L. SAH

कमलाकान्त का पोथा

मूल लेखक

महर्षि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

श्री कमल, बी० ए०

सम्पादक

पं० रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

श्री प्रभाकर साहित्यालोक

रानीकटरा, लखनऊ।

विमल बंकिमसीरीज की ११ वीं रश्मि
जुलाई, १९५५ ई०

प्रथम संस्करण २२०० मूल्य दो रुपया

मुद्रकः—
बनारसीदास मेहरोत्रा
रामा प्रेस (फोन नं० ४६४८),
नजीराबाद, लखनऊ।

परिचायिका

श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी एक औपन्यासिक ही नहीं थे। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वह एक सूक्ष्मदर्शी कवि और कलाकार थे। उनकी रचनाओं में इस कमलाकान्तेर दफ्तर या कमलाकान्त के पोथे का एक विशेष स्थान है। इसमें उन्होंने मर्मस्पर्शी व्यंग किया है। एक प्रतिभाशाली विद्वान् लेखक हँसी-हँसी में कितनी गहरी बात कह सकता है, कितना उच्चकोटि का प्रभावशाली विनोद करके गहरी चुटकी ले सकता है, इसका अत्युत्कृष्ट निदर्शन इस पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति में है। बहुत दिन हुए, इसका मैं स्वयं 'चौबे का चिट्ठा' के नाम से अनुवाद कर चुका हूँ। आज इसके एक दूसरे विद्वान् के किये हुए अनुवाद का सम्पादन करने का अवसर पाकर मुझे प्रसन्नता हुई; क्योंकि इस उपलक्ष्य में फिर नए सिर से इस ग्रन्थरत्न के अध्ययन और मनन का मौका मिला। इस ग्रंथ की उपयोगिता शायद कुछ लोगों की दृष्टि में अब उस समय के समान नहीं रही हो; पर मेरी समझ में इसकी उपयोगिता सदैव बनी रहेगी। आशा है, इस अनुवाद का भी उचित आदर होगा।

रूपनारायण पाण्डेय

रानीकटरा

लखनऊ, २०-५-५५

हिन्दी-जगत में, बंगला भाषा के प्रख्यात तथा सर्वश्रेष्ठ अनुवादक वयोवृद्ध साहित्यसेवी श्री रूपनारायण पाण्डेय द्वारा अनुवादित व संपादित, ऋषि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय-कृत सभी उपन्यास एवं साहित्य ग्रंथों के प्रकाशन करने का सौभाग्य पाने पर हमें हर्ष है।

सत्साहित्यसंवर्द्धन की दिशा में हमारे इस प्रयास मे प्रगति होगी, ऐसी आशा है।

प्रकाशक

कमलाकान्त का पोथा

कमलाकान्त को बहुत से लोग पागल कहते थे। वह किस समय क्या कहता था, क्या करता था, इसका कुछ निश्चय न था। ऐसी बात नहीं कि उसे लिखने पढ़ने की जानकारी नहीं थी। वह कुछ अंग्रेजी और कुछ संस्कृत जानता था। किन्तु जिस विद्या से अर्थोपार्जन न हो, वह विद्या क्या कोई विद्या है? असल बात यह है कि साहब-सूबों के पास जाना आना चाहिए। कितने ही बड़े बड़े मूर्खों ने, जो केवल दस्तखत कर सकते है जमीन जायदाद बना ली है—मेरे मत से वे ही विद्वान हैं, और कमलाकान्त की तरह विद्वान, जिन्होंने केवल कुछ पुस्तकें पढ़ डाली हैं, वे मेरी ही तरह प्रचण्ड मूर्ख हैं।

एक बार कमलाकान्त को नौकरी मिल गई थी। उसके मुँह से अंग्रेजी बोली सुनकर एक अंग्रेज ने उसे बुला लिया और उसे उन्होंने किरानी की जगह दे दी थी। किन्तु कमलाकान्त अपनी नौकरी को रख न सका। वह आफिस में जाकर आफिस का काम नहीं करता था। सरकारी खाते में कविता लिखता था—आफिस के चिट्ठी लिखने के पन्नों पर शेक्सपियर नामक किसी लेखक के वचन उद्धृत करके लिख देता था। बिल की कापी के पन्नों पर चित्र अङ्कित कर देता था। साहब ने एक बार उसे मासिक वेतन का पे-बिल तैयार करने को कहा था। कमलाकान्त ने बिल की कापी लेकर एक चित्र अंकित करके दिखाया कि कुछ नागा साधु साहब से भीख माँग रहे हैं। साहब ने नये प्रकार का पे-बिल देखकर कमलाकान्त की मान-रक्षा करते हुए उसे विदा कर दिया।

कमलाकान्त की नौकरी यहीं तक चली। उसको रुपये की भी बहुत जरूरत नहीं थी। कमलाकान्त ने कभी विवाह नहीं किया। चाहे जहाँ

हो, उसे दो कौर अन्न और अठन्नी भर अफीम मिलने से ही काम चल जाता था। जहाँ-तहाँ पड़ा रहता था। बहुत दिन मेरे मकान में रहा। पागल समझ कर मैं उसकी देख भाल करता था। किन्तु मैं भी उसको न रख सका। वह कहीं भी स्थायी न रहता था। एक दिन प्रातःकाल उठकर ब्रह्मचारी की तरह गेरुआ कपड़ा पहनकर कहीं चला गया। कहाँ चला गया, मैं उसको फिर न पा सका। उसी समय से फिर वह वापस न आया।

उसके पास एक पोथा था। कमलाकान्त की निगाह से फटा कागज भी नहीं बचने पाता था। देख लेने पर उस पर अनाप शनाप न जाने क्या लिख डालता था, कुछ समझ में नहीं आता था। कभी कभी मुझे पढ़ कर सुनाया करता था, सुनने से मुझे नींद आने लगती थी। ये सब कागज स्याही लगे पुराने कपड़े के टुकड़े में बंधे रहते थे। जाते समय कमलाकान्त मुझे वह पोथा दे गया। कह गया—"मैं तुमको यह बख्शिश दे रहा हूं।"

इस अमूल्य रत्न को लेकर मैं क्या करूंगा? पहले मैंने सोचा कि अग्निदेव की भेंट कर दूं, फिर मेरे मन में लोकहितैषिता का भाव बहुत प्रबल हो गया। मैंने सोच लिया कि जो दूसरे का उपकार नहीं करता उसका जन्म व्यर्थ है। इस पोथे में सुनिद्रा की अति उत्कृष्ट औषधि है—जो पढ़ेंगे, उनको ही सुनिद्रा आ जायगी। जो लोग अनिद्रा रोग से पीड़ित हैं उनके उपकार के लिये मैं कमलाकान्त की रचनाओं का प्रचार करने में तत्पर हो रहा हूं।

श्री भीष्मदेव खुशनवीस

कमलाकान्त का पोथा

प्रथम संख्या

अकेला

"वह कौन गा रहा है ?"

चिरकाल-विस्मृत सुखस्वप्न की स्मृति की भांति वह गीत कर्णरन्ध्रों में प्रवेश कर गया। इतना मधुर क्यों लगा वह? संगीत अति सुन्दर हो, ऐसी कोई बात नहीं है। पथिक राह से अपनी रुचि के अनुसार गाता चला जा रहा है। ज्योत्स्नामयी चाँदनी रात देखकर उसके मन का आनन्द उमड़ता जा रहा है। उसका कंठ सहज ही मधुर है। वह मधुर कंठ से, इस मधुमास में अपने मन का माधुर्य बिखेरता चला जा रहा है। तो फिर बहुत से तारों से बने सितार के तारों पर अंगुलियों का स्पर्श होने की तरह वह गीतध्वनि मेरे हृदय को आलोड़ित क्यों कर रही है ?

क्यों, कौन बतावेगा ! रात्रि है ; ज्योत्स्नामयी नदी की रेती पर चाँदनी खिली हुई है। अर्धावृता सुन्दरी के नीले परिधान की तरह, शीर्ण शरीर वाली नीलजलधारिणी तरंगिणी रेती को घेरकर बहती चली जा रही है। राज पथ में आनन्द ही आनन्द है—बालक, बालिकाएं, युवक, युवती, प्रौढ़ा, वृद्धा सभी विमल चन्द्र किरणों में नहाकर आनन्द मना रहे हैं। मैं ही केवल निरानन्द हूं—इसी कारण उस संगीत से मेरा हृदय यन्त्र हिल उठा।

मैं अकेला हूं—इसी कारण इस संगीत से मेरा शरीर रोमांचित हो गया। इस जनाकीर्ण नगरी में उस आनन्दमय अनन्त जनस्रोत के बीच में अकेला हूं। उस अनन्त जनस्रोत में मिलकर मैं भी इस विशाल आनन्दतरंग-ताड़ित जल के बुलबुलों के बीच एक और बुलबुला क्यों न बन जाऊं ? बिन्दु बिन्दु जल को लेकर यह समुद्र बना है। मैं जल-बिन्दु हूँ, इस समुद्र में क्यों न मिल जाऊं ?

यह मैं नहीं जानता—केवल यही जानता हूं कि मैं अकेला हूं। कोई अकेले मत रहो। यदि दूसरा कोई तुम्हारे साथ प्रेम का भागी न हो, तो तुम्हारा मनुष्य जन्म व्यर्थ है। पुष्प सुगन्धमय है, किन्तु यदि कोई सूंघने वाला ही न होता, तो पुष्प सुगन्धयुक्त नहीं होता—सूंघने को इन्द्रिय न हो तो गन्ध का अस्तित्व ही नहीं है। फूल अपने लिए नहीं खिलता। दूसरों के लिए तुम अपने हृदयकुसुम को प्रस्फुटित कर देना।

किन्तु जो संगीत एक ही बार मैंने सुना था, वह मुझे इतना मधुर क्यों मालूम हुआ, यह मैंने नहीं बताया। बहुत दिनों तक आनन्द से ओतप्रोत संगीत मैंने नहीं सुना—बहुत दिनों से मैंने आनन्द का अनुभव नहीं किया। मेरी युवावस्था में जब पृथ्वी सुन्दर थी, जब हर फूल में मुझे सुगन्ध मिलती थी, हर पत्र के मर्मर में मधुर शब्द सुनाई पड़ता था, हर नक्षत्र में चित्रारोहिणी की शोभा देख पाता था, हर आदमी के चेहरे पर सरलता दिखाई पड़ती थी, तब आनन्द था। पृथ्वी अब भी वही है, मनुष्य चरित्र भी वही है, किन्तु वह हृदय अब वह नहीं रहा। तब संगीत सुनकर आनन्द होता था, आज यह संगीत सुनकर वही संगीत मुझे याद आ गया। जिस अवस्था में जिस सुख से उस आनन्द का मैं अनुभव करता था, वही अवस्था, वही सुख मुझे याद आने लगे। पलभर के लिए फिर मुझे यौवन वापस मिल गया। फिर उसी प्रकार मन ही मन एकत्र मित्र मण्डली के बीच बैठ गया, फिर वही अकारण आने वाली जोर की हँसी हँस पड़ा, जो बात निष्प्रयोजन समझ कर अब मैं नहीं कहता, उस समय विना प्रयोजन ही चित्त की चञ्चलता के कारण वही कहने लगा। फिर मैं उन बातों को कहने लगा, फिर अकृत्रिम हृदय से दूसरे के प्रेम को अकृत्रिम मानकर मन ही मन मैंने ग्रहण कर लिया। क्षणभर के लिए भ्रान्ति उत्पन्न हो गई—इसीलिये यह संगीत इतना मधुर जान पड़ा। केवल यही नहीं। तब संगीत अच्छा लगता था—अब अच्छा नहीं लगता—चित्त की जिस प्रफुल्लता के कारण अच्छा लगता था, वह प्रफुल्लता अब नहीं है, इसी से अच्छा नहीं लगता। मैं मन के भीतर मन को छिपाये उस बीते यौवन सुख के बारे में सोच रहा था—उसी समय यह पूर्वस्मृतिसूचक संगीत मेरे कानों में

पड़ा, इसी से वह इतना मधुर जान पड़ा।

वह प्रफुल्लता, वह सुख अब क्यों नहीं है! क्या सुख की सामग्री घट गई है? उपार्जन और हानि दोनों ही संसार के नियम है। किन्तु हानि की अपेक्षा उपार्जन अधिक हो, यह भी नियम है। तुम जितना ही जीवन की राह तय करोगे, उतनी ही सुखदायक सामग्री तुम जमा करोगे। तो फिर उम्र बढ़ने से स्फूर्ति क्यों घट जाती है? आकाश का तारा अब पहले की तरह क्यों नहीं चमकता? आकाश की नीलिमा में अब वह उज्ज्वलता क्यों नहीं रहती? जो जगह तृणपल्लवमय, कुसुमसुवासित, स्वच्छ कल्लोलिनी—सीकरसिक्त वसन्त पवन से सेवित जान पड़ती थी, वही अब बालुकामयी मरुभूमि की तरह क्यों मालूम होती है? केवल रंगीन काँच न रहने के कारण। आशा वही रंगीन काँच है। युवाकाल में सुख की मात्रा थोड़ी होती है, किन्तु सुख की आशा अपरिमित होती है। इस समय भोगे हुए सुख की मात्रा अधिक है, किन्तु वह ब्रह्माण्डव्यापिनी आशा कहाँ है? उस समय मैं नहीं जानता था कि, कैसे क्या होता है, किन्तु आशा अनेक करता था। अब मैं जान गया, इस संसार चक्र पर चढ़कर जहाँ का हूँ, वहीं लौट आना पड़ेगा। जब मैं मन में सोचता हूँ, कि अब आगे बढ़ रहा हूं, तब मैं केवल चक्कर लगाता होता हूँ। अब मैं समझ गया हूं कि, संसार-समुद्र में तैरना शुरू कर देने से, मुझे तरंग-तरंग से टकराना पड़ेगा, जो मुझे फिर किनारे पर फेंक जायँगी। अब मैं जान गया हूं कि इस जंगल में रात नहीं है, इस मैदान में जलाशय नहीं है, इस नदी का किनारा नहीं है, इस सागर में द्वीप नहीं है, इस अन्धकार में नक्षत्र नहीं है। अब मैं जान गया हुं कि फूलों में कीड़े हैं; कोमल पल्लवों में कण्टक है, आकाश में बादल हैं, निर्मल नदी में भँवर हैं, फलों में विष है, उद्यानों में सर्प हैं, मनुष्य हृदय में केवल अपना आदर या स्वार्थ है। अब मैं जान गया हूं कि, सभी वृक्षों पर फल नहीं लगते, सभी फूलों में गन्ध नहीं है, सभी बादलों में वर्षा का जल नहीं है, सभी वनों में चन्दन नहीं है, सभी गजों में मुक्ता नहीं है। अब मैं समझ रहा हूं कि, काँच भी हीरे की तरह उज्ज्वल है, पीतल भी सुवर्ण की तरह

चमकता है, कीचड़ भी चन्दन की तरह स्निग्ध है, काँसा भी चाँदी की तरह मधुर शब्द करता है—किन्तु मैं क्या कह रहा था, भूल गया। उसी गानिध्यान की बात! वह मुझे अच्छी लगी थी जरूर, किन्तु फिर दूसरी बार मैं उसे सुनना नहीं चाहता। जिस तरह वह मनुष्यकंठ से निकला हुआ संगीत है, उसी तरह संसार में एक संगीत है, संसाररस के रसिक लोग ही उसको सुन पाते हैं। उस संगीत को सुनने के लिए मेरा चित्त आकुल है। उस संगीत को क्या मैं फिर न सुन सकूंगा? सुनूंगा, किन्तु अनेक बाजों की ध्वनि से मिले हुए, बहुत से कंठों से निकले हुए उस पूर्वश्रुत संसार-गीत को अब न सुनूंगा। वे सब गायक अब नहीं हैं—वह अवस्था नहीं है, वह आशा नहीं है। किन्तु उसके बदले में मैं जो कुछ सुन रहा हूं, वह अधिकतर प्रीतिदायक है। अनन्य सहाय एक मात्र गीत ध्वनि से कर्णविवर परिपूर्ण हो रहे हैं। संसार में प्रीति सर्वव्यापिनी है—ईश्वर ही प्रीति है, मेरे कानों में प्रीति ही इस समय का संसार-संगीत है। उस महासंङ्गीत के साथ मनुष्यों की हृदयतन्त्री अनन्त काल तक बजती रहे। यदि मनुष्य जाति के ऊपर मेरी प्रीति रहे, तो मैं दूसरा सुख नहीं चाहता।

श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती

द्वितीय संख्या

मनुष्य फल

अफीम की मात्रा जरा अधिक बढ़ा देने से, मुझे मालूम होता है कि सभी मनुष्य-फल विशेष हैं। संसार-वृक्ष के मायारूपी डंठलों पर झूल रहे हैं। पक जाने पर तुरन्त ही गिर जायेंगे। सभी फल पकने नहीं पाते—कुछ अकाल ही में आँधी से गिर जाते हैं। किसी को कीड़े खा जाते हैं, किसी को चिड़ियाँ चोंच से ठुकराती हैं, कुछ सूख कर झड़ जाते हैं। कुछ अच्छी तरह पक जाने पर खाये जाते हैं, गंगा जल से धोये जाकर वे देवसेवा में या ब्राह्मण-भोजन के काम आते हैं—उनका ही फल-जन्म या मनुष्यजन्म सार्थक है। कुछ सुपक्व होकर, वृक्ष से चूकर

मिट्टी पर पड़े रह जाते हैं। उन्हें सियार खा जाते हैं। इनका मनुष्य जन्म व्यर्थ है। कुछ फल तीत होते हैं, कड़वे या कसैले होते हैं—किन्तु उनसे अमूल्य औषधियां तैयार होती हैं। कुछ फल विष से भरे रहते हैं—जो खाता है, वही मर जाता है। और कुछ फल निकम्मे किस्म के होते हैं—केवल देखने में सुन्दर हैं।

कभी कभी ऊँघते-ऊँघते मैं देख पाता हूं कि पृथक-पृथक सम्प्रदाय के मनुष्य पृथक पृथक जाति के फल हैं। हमारे देश में वर्तमान समय के जितने बड़े आदमी हैं, वे मनुष्य जाति के अन्तर्गत कटहल सरीखे जान पड़ते हैं। कुछ तो बहुत लसदार हैं और कुछ में केवल अखाद्य मूसला ही भरा है—गाय बैल के खाने योग्य हैं। कुछ कच्चे ही रहते हैं, कभी नहीं पकते। कुछ पकने दिये जायं तो पक सकते हैं, किन्तु पकने नहीं पाते। पृथ्वी के राक्षस-राक्षसियाँ हैं वे कच्चा ही उन्हें तोड़ कर तरकारी बनाकर खा जाते हैं। यदि पक जाते हैं तो सियारों का बहुत उत्पात होने लगता है। यदि वृक्ष घिरा रहे तो अच्छा ही है। यदि कटहल के फल ऊंची डालियों पर लग जाँय तो ठीक ही है, नहीं तो सियार किसी उपाय से उन्हें खा जायंगे। सियारों में से कोई दीवान है, कोई कारकुन है, कोई नायब है, कोई गुमाश्ता है, कोई मुसाहिब है, कोई केवल आशीर्वाद देने वाला है। यदि इन सबके हाथों से बचकर पका कहटल घर में गया तो, मक्खियों की भनभनाहट शुरू हो जाती है। मक्खियाँ कटहल नहीं पसन्द करतीं, वे केवल थोड़ा थोड़ा रस पाने की आशा में रहती हैं। यह मक्खी कन्या के विवाह-भार से पीड़ित है इसे एक बूंद रस दे दो।—उसके ऊपर माता का भार पड़ा है, जरा दे दो। इसने एक पुस्तक लिखी है, थोड़ा रस दे दो, उसने अपना पेट भरने के लिए एक समाचार-पत्र निकाला है, उसको भी जरा दे दो। यह मक्खी कटहल की बुआ के जेठ के लड़के के साले की साली का पुत्र है—इसे भोजन नहीं मिलता, इसे कुछ रस दे दो। उस मक्खी की पाठशाला में पौने चौदह विद्यार्थी पढ़ते हैं, कुछ रस दे दो। फिर इधर कटहल घर में रखना भी अच्छा नहीं है—सड़ कर दुर्गन्ध फैलने

लगती है। मेरे विचार से कटहल को फोड़ कर उत्तम निर्जल दूध की खीर बनाकर कमलाकान्त जैसे सुब्राह्मण को खिलाना ही अच्छा है।

इस देश की सिविल सर्विस के साहब लोगों को मैं मनुष्य जाति के अन्तर्गत आम का फल समझता हूं, इस देश में आम नहीं था। समुद्र पार से कोई महात्मा इस उपादेय फल को इस देश में ले आये हैं। आम देखने में लाल—लाल है, वह टोकरी को चटकीला प्रकाशमय बना देता है, कच्चा रहने पर बहुत खट्टा होता है—पक जाने पर अवश्य सुमिष्ठ हो जाता है, किन्तु तो भी गुठली से खटाई दूर नहीं होती। कुछ आम इतने भद्दे होते हैं कि पक जाने पर भी उनका खट्टापन दूर नहीं होता। किन्तु देखने में बहुत लाल—लाल होते हैं, विक्रेता धोखा देकर पचीस रुपये में सौ को दर से बेच जाता है। कुछ कच्चे मीठे होते हैं—पकने पर पनीले रहते हैं। कुछ पाल में पकते हैं। उन्हें बारीक काट कर नमक लगाकर अमचूर तैयार करना ही ठीक है।

सबलोग आम खाना नहीं जानते। पेड़ से तोड़ कर तुरन्त यह फल खाना चाहिये। इसे 'सलाम' के पानी में रखकर ठंडा कर लेना—यदि मिल जाय तो उस जल में खुशामद की बर्फ डाल देना—बहुत ठंडा हो जायगा। उसके बाद छुरी चलाकर मजे से खा सकते हो।

लौकिक बातचीत में स्त्रियों की तुलना लाग केले से करते हैं, किन्तु यह छिछारी बात है, कदली फलों के साथ भुवन मोहिनी जाति में समता मैं नहीं देखता। स्त्रियाँ क्या गौध की गौध फलती हैं? जिसके भाग्य में फलती हों फलें, कमलाकान्त के भाग्य में तो ऐसी बात नहीं है। कदली के साथ स्त्रियों का सादृश्य इस हद तक है कि, दोनों ही वानरों को प्रिय हैं। स्त्रियों में यह गुण रहने पर भी मैं कदली के साथ उनकी तुलना नहीं कर सकता। दूसरे पक्ष में कुछ ऐसे कटुभाषी हैं, जो फलों में कुंदरू फल को ही युवतियों की उपमा कहते हैं। जो ऐसा कहता है वह है दुर्मुख—मैं इन स्त्रियों का दास हूं, मैं ऐसी बात न कहूंगा।

मैं कहता हूं कि, स्त्रियाँ इस संसार में नारियल हैं। नारियल भी गौध में फलता है जरूर, किन्तु (व्यावसायी के अतिरिक्त) कोई गौध की

गौध उन्हें नहीं तोड़ता। कोई किसी समय द्वादशी को पारण करने के लिये अथवा वैशाख मास में ब्राह्मण सेवा के निमित्त एकाध नारियल तोड़ लेता है। ढेर के ढेर तोड़कर खाने के अपराध का यदि कोई अपराधी हो, तो वे हैं कुलीन ब्राह्मण लोग। कमलाकान्त कभी इस अपराध का अपराधी नहीं है वृक्ष के नारियल की तरह संसार के नारियल की अवस्था उमर के भेद से कई प्रकार की होती है। कच्ची अवस्था में दोनों ही बहुत स्निग्धकर हैं—नारियल के जल से उदर स्निग्ध होता है,—किशोरी के अकृत्रिम विलास-लक्षण शून्य प्रणय से हृदय स्निग्ध हो जाता है,—किन्तु ये दो जातीय हैं,—फल जातीय और मनुष्य जातीय। नारियल कच्चा ही अच्छा होता है। तब देखने में वह कैसा उज्ज्वल श्याम होता है,—कैसा ज्योतिर्मय होता है, धूप उससे टकराती है,—मानो उस नवीन श्यामशोभा से जगत की धूप शीतल होती है। पेड़ों के ऊपर गौध के गौध नारियल, और खिड़की पर झुण्ड की झुण्ड युवतियाँ, मेरी दृष्टि में समान दिखाई पड़ती हैं,—दोनों ही चारों तरफ उजाला करते हैं। किन्तु देखो,—देखकर भूल मत जाना—यह है चैत्रमास की धूप। पेड़ से कच्चा नारियल तोड़ते ही मत काटना, बहुत गरम रहता है। संसार-शिक्षा शून्य किसी स्त्री को अकस्मात् मत ग्रहण करना,—तुम्हारा कलेजा जल कर राख हो जायेगा। आमकी तरह नारियल को भी बर्फ के जल में रख कर शीतल कर देना, बर्फ न मिल सके तो, पोखरी के कीचड़ में गाड़ कर उसे ठंढा कर देना, मीठी बातों से न कर सको, तो कमलाकान्त चक्रवर्ती की आज्ञा है, कड़ी बातों से करना।

नारियल में चार सामग्री हैं—जल, गरी या गूदा, खोपड़ा और छिलका। नारियल के जल के साथ स्त्रियों के स्नेह का सादृश्य मुझे दिखाई पड़ता है। दोनों ही बहुत स्निग्धकर हैं। जब तुम संसार की धूप से दग्ध होकर हाँफते हाँफते गृह की छाया में बैठकर विश्राम की कामना करते हो, तब शीतल जल पी जाना—सभी यन्त्रणाओं को भूल जाओगे। तुम्हारे दारिद्रय चैत्र में, या बन्धु-वियोग बैशाख में, तुम्हारे यौवन मध्याह्न में अथवा रोगतप्त तीसरे पहर में और किस चीज से

तुम्हारा हृदय शीतल होगा ? माता का आदर, स्त्री का प्रेम, कन्या की भक्ति, इनकी अपेक्षा जीवन के सन्ताप में और क्या सुख है ? ग्रीष्म-ताप में नारियल के जल के बराबर और क्या है !

किन्तु पक जाने पर जल कुछ तीखा हो जाता है। रामा की माँ के पक जाने के बाद रामा का बाप कड़ुवेपन की चोट से मकान छोड़कर चला गया था। इसीलिए नारियल के कच्चे फल का आदर होता है।

नारियल का गूदा है स्त्रियों की बुद्धि। कच्ची अवस्था में बहुत नहीं रहती। गहर अवस्था में बहुत कठिन होती है, तब दाँत गड़ाने की सामर्थ्य किसमें रहती है ? उस समय उसको गृहणीपना कहते हैं। गृहणीपन रसाल तो है किन्तु उस पर दाँत नहीं गड़ता। एक तरफ कन्या बैठी हुई है, माता के गहनों के बक्स से कुछ हिस्सा पाना चाहती है—किन्तु पके हुये नारियल का गूदा इतना कड़ा है, कि लड़की का दांत उस पर गड़ने नहीं पाता। पकी हुई गृहणी ने दया करके एक बाली निकाल कर दे दी, संभवतः पुत्र बैठा हुआ है, माता की नकद पूंजी पर दांत गड़ावेगा, पकी हुई गृहणी ने दया करके नकद सात चवन्नियां निकाल कर दे दीं। पति ने वृद्धावस्था में कोई व्यवसाय आरम्भ करने की इच्छा की है, किन्तु आखिरी उम्र में हाथ खाली है—रुपये के बिना व्यवसाय नहीं होता। पकी हुई की पूंजी पर उनकी दृष्टि है। उन्होंने दो चार प्रवृत्ति रूप दांतों को खोल दिया, वृद्धावस्था में दांत टूट गये। अन्त में यदि दांत बैठ गये तो किसमें ताकत है जो नारियल को हजम कर ले ! जब तक रुपया लौटा नहीं देते, तब तक अजीर्ण रोग से रात को नींद नहीं आती।

उसके बाद खोपड़े का हाल सुनिये—यह है स्त्रियों की विद्या कभी आधी के सिवा पूरी मुझे नहीं दिखाई पड़ी। नारियल की खोपड़ी बहुत काम में नहीं आती। स्त्रियों की विद्या भी बड़ी नहीं होती। 'मेरी समरविल' ने विज्ञान लिखा है, 'जेन आस्टिन' या 'जार्ज इलियट' ने उपन्यास लिखे हैं—कुछ खराब नहीं लिखा है, किन्तु वे हैं खोपड़ी की नाप के अनुसार।

छिलका—यह स्त्रियों का सौन्दर्य है। छिलका है नारियल का बाह्य अंश, सौन्दर्य भी है स्त्रियों का बाह्य अंश। दोनों बड़े असार हैं। इन्हें परित्याग करना ही अच्छा है। किन्तु छिलके से एक काम होता है—उत्तम रस्सी तैयार होती है, उससे जहाज बांधे जाते हैं, स्त्रियों के सौन्दर्य की रस्सी से भी अनेक जहाज बाँधे गये हैं। तुम लोग जिस तरह नारियल की रस्सी से जगन्नाथ का रथ खींचते हो, वैसे ही स्त्रियों के सौन्दर्य की रस्सी से कितने भारी भारी मनोरथ खींचे जाते हैं। जब रथ खींचने का निषेधसूचक कानून बनेगा, तब उसमें इस रथ खींचने की क्रिया में निषेध मूलक एक धारा रहनी चाहिये। ऐसा होने से अनेक नर हत्याओं का निवारण हो जायगा। मैं नहीं जानता कि नारियल की रस्सी गले में बाँध कर किसी ने कभी प्राण त्याग किया है कि नहीं, किन्तु स्त्री की रूप रज्जु गले में बांध कर कितने लोगों ने प्राण दे दिये हैं, इसकी गणना कौन करेगा ?

वृक्ष के नारियल और संसार के नारियल के साथ मेरा विवाद यह है कि, मैं हूं अभागा, दोनों में से एक को भी न प्राप्त कर सका। दूसरे फल अंकुसी से तोड़े जाते हैं, किन्तु पेड़ पर चढ़े बिना नारियल नहीं तोड़ा जाता। पेड़ पर चढ़ने के लिए भी या तो अपने पैरों में रस्सी बाँधनी पड़ेगी, अथवा डोम की खुशामद करनी पड़ेगी।×

डोम की खुशामद करने को भी मैं राजी हूं। किन्तु मेरे भाग्यदोष से नारियल नहीं जुटता। मैं जिस तरह का मनुष्य हूँ, उसी तरह के पेड़ से उसी तरह के रूप-गुण की अंकुसी से नारियल तोड़ सकता हूं। किन्तु, भय है, कि नारियल मेरे सिर पर न आ गिरे। ऐसी अनेक श्यामी, वामी, रामी, कामिनी आदि हैं कि जो कमलाकान्त को भी पति कहकर ग्रहण कर सकती हैं। किन्तु दूसरे की लड़की को सिरपर लाद कर लेकर संसारयात्रा कर निर्वाह करने में यह दीन असमर्थ है। खैर, इस बार

×कमलाकान्त शायद पुरोहित को डोम कह रहा है। क्योंकि पुरोहित ही विवाह कराता है। ओः! कैसा पाजी है।

! भीष्मदेव

कमलाकान्त भक्तिभाव से नारियल फल विश्वेश्वर को अर्पण कर देगा। पहले तो वे श्मशानवासी हैं, दूसरे वे विषपान भी कर चुके हैं, यह तुच्छ नारियल का फल उनका क्या बिगाड़ सकेगा !

आजकल इस देश में एक जाति के लोग दिखाई पड़े हैं। वे देश-हितैषी के नाम से प्रसिद्धि पा चुके हैं। उनको मैं हरसिंगार का फूल समझता हूं। जब फूल खिलते हैं, तब देखने में सुन्दर होते हैं—बड़े-बड़े लाल-लाल, पेड़ उजाला बनाये रहते हैं। किन्तु मेरी दृष्टि में मुण्ढे वृक्ष पर बहुत लाली अच्छी नहीं लगती, कुछ कुछ पत्तियों से ढके रहते तो पेड़ अच्छे दिखाई पड़ते। पत्तियों के बीच से जो थोड़ा थोड़ा लाल दिखाई पड़ता है, वही सुन्दर है। फूल में गन्धमात्र नहीं, केवल कोमलता पाता हूं, किन्तु तो भी फूल बड़े बड़े लाल लाल होते हैं। यदि फूल झरकर फल निकल आते, तो मैं समझता कि, इस बार कुछ लाभ होगा। किन्तु ऐसी बात बहुत नहीं होती। कालक्रम से चैत मास के आजाने से धूप के ताप से अन्तर्लघु फल फट् से फट जाता है, उसके भीतर से थोड़ी सी रुई निकलकर समस्त बंगदेश में फैल जाती है।

अध्यापक ब्राह्मण संसार के धतूरा फल हैं। बड़े बड़े लम्बे लम्बे समासों में, बड़े बड़े वचनों में, उनके अति सुदीर्घ कुसुम खिलते हैं, जब फलते हैं तो कण्टकमय धतूरा फल प्रकट हो जाते हैं। मैंने बहुत दिनों से इच्छा की है कि मुर्गी का मांस भक्षण करके हिन्दू जन्म को पवित्र बनाऊंगा। किन्तु अधम धतूरों के काँटों के कारण मैं यह काम न कर सका। इसका गुण केवल यह है कि इस फल से मादक की मादकता बढ़ जाती है, जिस गंजेड़ी के गांजे में नशा नहीं होता, उसके गांजे के साथ धतूरे के दो बीज मिलाकर चढ़ा दो—जिस भांग खाने वाले की भांग में नशा नहीं होता, उसकी भांग के साथ दो बीज पीस दो, नशा जम जायेगा। संभवतः इसी हिसाब से बंगीय लेखक गण अपने अपने निबन्धों में अध्यापकों से दो चार वचन लेकर गूंथ देते हैं। निबन्ध गांजे में उस वचन धतूरे के बीज पड़ जाने से नशा जम जाता है। इस नशे से बंगदेश आजकल उन्मत्त हो उठा है।

अपने देश के लेखकों की गणना मैं इमली में करता हूं, अपनी संपत्ति है कड़ाही और तलछट, किन्तु दूध को भी स्पर्श करने से वह दही बना देता है। गुणों में केवल अम्ल गुण है—वह भी निकृष्ट अम्ल है। किन्तु उसके एक गुण को मैं मानता हूं, ये लोग साक्षात् काष्ठावतार हैं। इमली की लकड़ी नीरस तो अवश्य ही है, किन्तु समालोचना की आग से इसे जला देना अच्छा है। सच बात बोलने में हर्ज ही क्या है, इमली की तरह कुसामग्री मैं संसार में नहीं देख पाता। जो अल्प परिमाण में खा लेता है, उसी को अजीर्ण हो जाता है, वही अम्ल उगलने लगता है। जो अधिक परिमाण में खाता है, वही अम्ल-पित्त रोग से चिररोगी हो जाता है। जो लोग साहब हो गये हैं, टेबिल पर बैठकर गैस के प्रकाश में या अंगीठी जलाकर फैजू खानसामा के हाथ की बनी रसोई काँटे-चम्मच से खाना सीख गये हैं, वे एक संकट से बच गये हैं—इमली के अम्ल के पास उन्हें जाना नहीं पड़ता—शुरू से अन्त तक इमली मिली मछली से भात खाना नहीं पड़ता। किन्तु जिन लोगों को फूस के घर में बैठकर, मुंगेरी पत्थर गोद में लेकर पदी बुआ की पकाई रसोई खाने की जरूरत पड़ती है, उनको कितना कष्ट है! पदी बुआ कुलीन घराने की लड़की है, प्रातः स्नान करती है, रामनामी ओढ़ती है, हाथ में तुलसी की माला लिये रहती है, किन्तु रसोई पकाते समय उड़द की दाल और इमली मिली मछली के सिवा और कुछ भी पकाना नहीं जानती। फैजू जाति का मुसलमान है, किन्तु रसोई अमृत की तरह बनाता है।

एक और मनुष्यफल की बात कहकर ही आज का काम समाप्त करता हूं। देशी हाकिम लोग कौन फल हैं, बताओ तो? जो क्रोध करना चाहें करें, मैं स्पष्ट बात कहूंगा, ये लोग संसार के कोंहड़े हैं। यदि छप्पर के ऊपर चढ़ा दिया जाय, तभी ये, ऊंचाई पर फलते हैं; नहीं तो जमीन पर लुढ़कते फिरते हैं। जहां इच्छा हो वहीं इनको उठा रखो, थोड़ी सी आंधी-पानी आने से ही लताओं के टूट जाने से जमीन पर गिरकर लोटने-पोटने लगते हैं। बहुत से रूप में कोंहड़े हैं, गुणों में भी कोंहड़े हैं। किन्तु कोंहड़ा आज कल दो प्रकार के होते हैं—देशी कोंहड़ा और विलायती

कोंहड़ा। विलायती कोंहड़ा कहने से यह न समझ लेना चाहिए, कि ये कोंहड़े विलायत से आए हैं। जिस तरह देशी मोची के बनाए हुए जूते को अंग्रेजी जूता कहते है, ये लोग भी ठीक उसी प्रकार के विलायती हैं। विलायती कोंहड़े का गौरव अधिक है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। संसार के बाग में और भी अनेक फल लगते हैं, उनमें सबसे निकृष्ट है खटाई।

श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती

यूटिलिटी ✪ या उदर दर्शन

'बेन्थम' हितवाद दर्शन का निर्माण कर यूरोप में अक्षय कीर्ति स्थापित कर गए हैं।

मैं इस हितवाद मत का विरोध नहीं करता, वरन् मैं इसका अनुमोदक हूं। किन्तु आप लोग जानते हैं या नहीं, मैं नहीं कह सकता, मैं एक सुयोग्य दार्शनिक हूं। इस हितवाददर्शन के अवलम्बन से कुछ गढ़कर मैंने एक नवीन दर्शन शास्त्र बनाया है। वास्तव में वह बंगाल में प्रचलित हितवाद दर्शन की नवीन व्याख्या मात्र है। उसका स्थूल मर्म मैं संक्षेप में लिख रहा हूं। प्राचीन प्रथा के अनुसार यह दर्शन सूत्राकार में लिखा

✪ "यूटिलिटी" शब्द का अर्थ क्या है? इसका क्या कोई बंगला शब्द नहीं है। मैं स्वयं अंग्रेजी नहीं जानता—कमलाकान्त ने भी कुछ बतला नहीं दिया है। इसलिए अन्त में मैंने अपने लड़के से पूछा था। मेरे लड़के ने डिक्शनरी देखकर इस तरह व्याख्या की है—"यू" शब्द का अर्थ है तुम या तुमलोग, 'टिल' शब्द का अर्थ है खेत जोतना।

ई का अर्थ वह बतला नहीं सका। किन्तु मैं समझता हूं कि कमलाकान्त ने "यू टिल ईट ई" पद का यही अर्थ लगाया है कि, तुम खेत जोत कर ही खाते हो। कितना पाजी है। सभी को हलवाहा कहता है। ऐसे दुर्वृत्त दशानन लम्बोदर गजानन की रचना पढ़ने में भी पाप है। मालूम होता है, मेरा लड़का अंग्रेजी पढ़ने-लिखने में निपुण हो गया है, नहीं तो ऐसे कठिन शब्दों का सुन्दर अर्थ वह नहीं लगा सकता था।

श्री भीष्मदेव खुशनवीस

गया है और मैंने स्वयं ही सूत्र का भाष्य करके उसके साथ साथ लिख दिया है। बंगला में ही वे सूत्र लिखे गये हैं। मैं संस्कृत नहीं जानता, ऐसा ख्याल कोई न करे। किन्तु संस्कृत में सूत्रों का अर्थ कितने लोग समझ सकेंगे? इस कारण साधारण पाठकों पर कृपा करके मैंने बंगला भाषा में ही सभी कार्यों का निर्वाह किया है। उस सूत्रग्रन्थ का सारांश यह है:—

१— जीव शरीरस्थ बृहत् गह्वर-विशेष को उदर कहते हैं।

भाष्य

"बृहत्"—अर्थात नासिका-कर्णादि क्षुद्र गह्वरों को उदर नहीं कहा जाता। कहने में विशेष बाधा है।

"जीवशरीरस्थ बृहत् गह्वर"—जीव शरीरस्थ कहने का तात्पर्य यह है कि, इसके बिना पर्वतगुहा प्रभृति को उदर कहकर परिचय देते हुए कोई उसकी पूर्ति की प्रत्याशा कर सकते हैं।

"गह्वर"—यद्यपि जीवशरीरस्थ गह्वरविशेष ही उदर शब्दवाच्य है, तथापि अवस्था—विशेष से अञ्जलि प्रभृति भी उदर में गिनने योग्य हैं। किसी जगह उदर को पूरा करना पड़ता है, किसी जगह अञ्जलि पूरी करनी पड़ती है।

२— उदर की त्रिविध-पूर्ति ही परम पुरुषार्थ है।

भाष्य

सांख्य का भी यही मत है। आधिभौतिक, आध्यात्मिक, और आधिदैविक, ये हैं त्रिविध उदर पूर्ति।

"आधिभौतिक"—अन्नव्यंजन, सन्देश, मिष्ठान्न प्रभृति भौतिक सामग्री के द्वारा उदर की जो पूर्ति होती है, वही है आधिभौतिक पूर्ति।

आध्यात्मिक—जो लोग बड़े आदमियों के वाक्यों से लुब्ध होकर कालयापन करते हैं, उन लोगों की आध्यात्मिक उदर पूर्ति होती है।

"आधिदैविक"—"दैवानुकम्पा से प्लीहा, यकृत् प्रभृति के द्वारा जिनका उदर भर जाता है, उनकी आधिदैविक उदर पूर्ति होती है।

३—इनमें से आधिभौतिक पूर्ति ही विहित है।

भाष्य

"विहित"—विहित शब्द के द्वारा अन्यान्य पूर्तियों का निषेध हुआ या नहीं, इसकी मीमांसा भविष्य के भाष्यकार लोग करेंगे।

अब सिद्ध हो गया कि, उदर नामक महा गह्वर में पूड़ी मिठाई प्रभृति भौतिक पदार्थों का प्रवेश ही पुरुपार्थ है। इसलिये इस गर्त में कैसा भूत प्रवेश कराया जा सकता है, उसका निर्वाचन किया जा रहा है।

४—विद्या, बुद्धि, परिश्रम, उपासना, बल और प्रतारणा इन छः प्रकार के पुरुषार्थों का उपाय पूर्व पण्डितों ने निर्देश किया है।

भाष्य

(१) "विद्या"—विद्या क्या है, इसको समझना कठिन है। कोई कोई कहते हैं कि लिखने-पढ़ने में शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, ग्रन्थ लिखना समाचार पत्रादि में लिखना जान लेना ही यथेष्ट है। कोई कोई यह आपत्ति करते हैं कि, जो लिखना नहीं जानता, वह पत्रादि में लिखेगा कैसे? मेरे विचार से ऐसा तर्क नितान्त अकिंचित्कर है। घड़ियाल का बच्चा अण्डे से निकलकर तुरन्त ही जल में चला जाता है, उसको तैरना सीखना नहीं पड़ता। ऐसी विद्या बंगाल को स्वतः सिद्ध है, इसके लिये लिखना-पढ़ना सीखने की जरूरत नहीं है।

(२) "बुद्धि" जिस आश्चर्य-जनक शक्ति के द्वारा रुई को लौह और लौह को रुई समझा जाता है, उसी शक्ति को बुद्धि कहते हैं। कृपण के साथ रहने वाली धनराशि की तरह इसको हम लोग स्वयं सर्वदा देख पाते हैं, किन्तु दूसरे कभी नहीं देख पाते। संसार की सभी सामग्री की अपेक्षा शायद जगत् में इसकी ही अधिकता है, क्योंकि, कभी किसी ने यह नहीं कहा कि, इसे हमने अल्प परिमाण में पाया है।

(३) "परिश्रम"—उपयुक्त समय पर थोड़ा गरम अन्न-व्यञ्जन भोजन, उसके बाद निद्रा, वायु सेवन, तमाखू का धूम्रपान, गृहिणी के साथ सम्भाषण इत्यादि गुरुतर कार्य सम्पादन का नाम परिश्रम है।

(४) "उपासना"—किसी व्यक्ति के साथ कोई बात कहने लगते हैं, तो या तो उसका गुणानुवाद या दोषकीर्तन करना पड़ता है। किसी

शक्तिशाली प्रधान व्यक्ति के सम्बन्ध में ऐसी बात होने से, यदि वे यथार्थं दोषयुक्त व्यक्ति हों, तो उनका दोषकीर्तन करने को निन्दा कहते हैं। और यदि वे दोषयुक्त न हों तो उनके दोषकीतन को स्पष्ट वक्तृत्व या रसिकता कहते हैं। गुण पक्ष में यदि वे गुणहोन हों तो उनके गुणकीर्तन को न्यायनिष्ठता कहते हैं। और यदि वे यथार्थ गुणवान हों तो उनके गुण-कीर्तन को उपासना कहते हैं।

(५) "बल"—दीर्घछन्द वाक्य—मुख नेत्रों का आरक्त भाव—जोर-शोर से बुलाना-पुकारना—मुंह से अनर्गल हिन्दी अंग्रेजी बोली, और थूककी वृष्टि—दूर से इशारे द्वारा, मुक्का, थप्पड़, घूंसा और लात दिखाना, और साढ़े तिरपन प्रकार की अन्यान्य अङ्गभंङ्गियाँ—और विपक्षका किसी प्रकार का उद्यम देखने से अकाल में पलायन इत्यादि को बल कहते हैं।

बल छः प्रकार का है, यथा—

मुख का—अभिशाप, गाली, निन्दा प्रभृति।

हाथका—मुक्का, थप्पड़ दिखाना प्रभृति।

पैरों का—पलायनादि।

चाक्षुष—रोदनादि। यथा चाणक्य पण्डित—

'बालानां रोदनं बलं इत्यादि।'

त्वचा का—प्रहार सहिष्णुता इत्यादि।

मन का—द्वेष, ईर्षा, हिंसा प्रभृति।

(६) प्रतारण—

निम्नलिखित व्यक्तियों को इस संसार में प्रतारक समझना।

प्रथम—व्यापारी। प्रमाण—दूकानदार चीजें बेचकर फिर मूल्य माँगने लगता है। मूल्यदाता मात्र का मत है कि खरीदते समय वे प्रतारित हुए हैं।

द्वितीय—चिकित्सक! रोगी के रोग से मुक्त हो जाने के बाद यदि चिकित्सक अपना पैसा माँगता है, तो रोगी प्रायः इसी सिद्धांत पर पहुँच जाता है कि, मैं स्वयं आराम हो गया हूं, यह मनुष्य धोखा देकर रुपया ले रहा है।

तृतीय—धर्मोपदेशक और धार्मिक व्यक्ति। ये लोग चिरप्रसिद्ध प्रतारक हैं। इनका नाम है "भण्ड।" ये लोग प्रतारक हैं, इसका विशेष प्रमाण यह है कि, ये लोग धन आदि की कामना नहीं करते।

५—इन छः प्रकार के उपायों से उदरपूर्ति या पुरुषार्थ असाध्य है।

भाष्य

इस सूत्र के द्वारा पूर्व पण्डितों के मत का खण्डन किया जा रहा है। विद्यादि षड्विध उपायों से जहाँ उदरपर्ति नहीं हो सकती, उसका उदाहरण क्रमशः दिया जा रहा है।

"विद्या"—विद्या से यदि उदरपूर्ति होती तो, बंगला समाचार पत्रों को अन्नाभाव क्यों होता?

"बुद्धि"—बुद्धि से यदि उदरपूर्ति होती, तो गधा गट्ठर क्यों ढोता?

"परिश्रम"—परिश्रम से यदि होती, तो बंगाली बाबू लोग किरानी क्यों रहते?

"उपासना"—उपासना से यदि होती, तो साहब लाग कमलाकान्त पर अनुग्रह क्यों नहीं करते? मैंने तो खराब पे-बिल नहीं लिखा है!

"बल"—बल से यदि होती तो हम लोग पढ़कर मार क्यों खाते!

"प्रतारणा"—प्रतारणा से यदि होती तो मदिरा की दूकानें समय-समय पर फेल क्यों हो जाती हैं!

६—उदरपूर्ति या पुरुषार्थ केवल हितसाधन से साध्य है।

भाष्य

उदाहरण—ब्राह्मण पण्डितगण लोगों के कानों में मन्त्र देकर उनका हित साधन करते हैं। यूरोपीय जातियों ने अनेक जंगली जातियों का हित साधन किया है और रूसी लोग आजकल मध्यएशिया का हित साधन करने में लगे हैं। विचारकगण विचार करके देश का हित साधन कर रहे हैं। बहुत से लोग सुविक्रेय और अविक्रेय पुस्तकें और पत्रादि की रचना करके देशका हित साधन कर रहे हैं। सबको प्रचुर परिमाण में उदरपूर्ति अर्थात् पुरुषार्थ लाभ हुआ है।

७—इस कारण सब लोग देशका हित साधन करो।

भाष्य

इस अन्तिम सूत्र के द्वारा हितवाददर्शन और उदरदर्शन की एकता प्रतिपादित हो गई। इस कारण इसी जगह कमलाकान्त के सूत्रग्रन्थ की समाप्ति हो गई। आशा है, यह भारतवर्ष के सप्तम दर्शनशास्त्र के रूप में आदृत होगा।

श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती

चतुर्थ संख्या

पतिंगा

बाबू के बैठकखाने में दीपक जल रहा है—पास ही मैं मोसाहबी तरीके से बैठा हुआ हूं। बाबू दलबन्दी के बारे में बातें कर रहे हैं—मैं अफीम चढ़ा रहा हूं। ऊंघ रहा हूं। मैंने दलबन्दी से चिढ़कर मात्रा को बढ़ा दिया है। विधि का लिखा कौन मेटेगा! इस अखिल ब्रह्माण्ड की अनादि क्रिया-परम्परा का एक काम यह है कि, उन्नीसवीं शताब्दी में कमलाकान्त चक्रवर्ती जन्मग्रहण करके, रात को नसीराम बाबू के बैठकखाने में बैठकर अफीम की मात्रा बढ़ा देंगे। इसलिए मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ कि, इसको अन्यथा करूँ।

ऊंघते ऊंघते मैंने देखा कि, एक पतंगा आकर फानूस के चारोतरफ आवाज करता हुआ चक्कर लगा रहा है। "चों—ओ—आ—ओ" "चों—ओं—ओं—" करके शब्द कर रहा है। अफीम के झोंके में मैंने सोचा, पतंग की भाषा क्या मैं समझ नहीं सकता! कुछ देरतक कान लगाकर सुनता रहा। किन्तु कुछ भी समझ न सका। मन ही मन मैंने पतंग से कहा—"तुम यह क्या ओं—चों—चों शब्द कर रहे हो, मैं कुछ भी समझ नहीं रहा हूं।" तब एकाएक अफीम की कृपा से मुझे दिव्य-श्रवणशक्ति मिल गई, मैंने सुना, पतंग बोला—मैं बत्ती के साथ बातचीत कर रहा हूं — तुम चुप रहो।" मैं तब चुप होकर पतंग की बातें सुनने लगा। पतंग कह रहा है—

"देखो दीपक महाशय, पुराने जमाने में तुम अच्छे थे, पीतल के

आधार पर मिट्टी की दीवट पर तुम शोभा पाते थे—हम लोग स्वच्छन्दता से जलमरते थे। अब तुम ढकने के अन्दर घुस गये हो—हम लोग चारो तरफ घूमते रहते हैं, प्रवेश करने का रास्ता हमें नहीं मिलता। जल कर मर नहीं सकते।

देखो, जल मरने का हमें राइट है, यह हम लोगों का चिरकाल का अधिकार है—हक है, हम पतंग जाति के लोग सदा से प्रकाश में जलकर मरते आ रहे है—कभी किसी प्रकाशने हमें मना नहीं किया। तुम काँच ओढ़ कर क्यों पड़े हुए हो प्रभु? हम गरीब पतिंगे हैं—हमारे ऊपर सहमरण-निषेध का कानून क्यों जारी है? हम लोग क्या हिन्दू स्त्रियाँ हैं कि जलकर मर न सकेंगी?

देखो, हिन्दू स्त्रियों से हमारा बहुत अन्तर है। हिन्दू स्त्रियाँ आशा-भरोसे के रहते कभी जल कर मरना नहीं चाहतीं। पहले विधवा हो जाती हैं, तब जलकर मरने जाती हैं। हम लोग ही केवल सब समय आत्म विसर्जन के इच्छुक हैं। हम लोगों के साथ स्त्री जाति की तुलना?

हमारी तरह स्त्री जाति भी रूपकी शिखा जलते देखकर कूद पड़ती हैं। फल भी एक है, हम भी जल मरते हैं। वे भी जल मरती हैं किन्तु देखो, उस दाहमें ही उनको सुख है। हमें क्या सुख है? हम केवल जलने के लिये जलते हैं, मरने के लिए मरते हैं? स्त्री जाति क्या यह कर सकती है? तो फिर हमारे साथ उनकी तुलना क्यों?

सुनो, यदि प्रज्वलित 'रूप' में हमने शरीर को अर्पण कर दिया तो यह शरीर किसलिए है? दूसरे जीव क्या सोचते हैं, यह हम बता नहीं सकते, किन्तु हम हैं पतंग जाति के, हम सोच कर समझ नहीं पाते कि, यह शरीर किसलिए है?—इसको लेकर हम क्या करेंगे? रोज फूलों का रस चूसते हैं, रोज विश्व प्रफुल्लित करनेवाली सूर्य किरणों में विचरण करते हैं। इसमें क्या सुख है? फूलों में वह एक ही गन्ध है, मधु में वह एक ही मिठास है, सूर्य में वह एक ही प्रकार की प्रतिभा है। ऐसे असार, पुरातन वैचित्र्यशून्य जगत में क्या रहना चाहिये? काँच के बाहर आजाओ, ज्वलन्त रूप शिखा में हम शरीर अर्पण कर देंगे।

देखो, मेरी भिक्षा बहुत छोटी है—अपने प्राण तुमको दे जाऊंगा, लोगे नहीं ? दूंगा ही तो, ग्रहण न करूंगा। तब हानि ही क्या है? तुमने रूप जलाने के लिए जन्म लिया है। मैं पतङ्ग हूं, मैंने जलने के लिए जन्म लिया है। आओ, जिसका जो काम है, उसे कर जायं। तुम हंसते रहो, मैं जलता रहूं।

तुम विध्वंस करने में समर्थ हो—तुमको रोक सके, जगत में ऐसा कोई भी नहीं है, कुछ भी नहीं है। तुम काँच के भीतर छिपे क्यों हो? तुम जगत् की गति के कारण हो। किसके भय से तुम डोम (घेरे) के भीतर छिपे हुए हो? किस डोम (नीच) ने इस डोम को गढ़ा है? किस डोम ने तुमको इस डोम के भीतर बंद कर दिया है? तुम तो विश्वव्यापी हो। काँच को तोड़ कर क्या तुम मुझे दर्शन नहीं दे सकते?

तुम क्या हो? यह मैं नहीं जानता, मैं नहीं जानता—केवल यही जानता हूं कि, तुम मेरी वासना की वस्तु हो, मेरे जाग्रत् के ध्यान हो, निद्रा के स्वप्न हो, जीवन की आशा हो—मरण के आश्रय हो। तुमको मैं कभी जान न सकूंगा। जानना मैं चाहता भी नहीं, जिस दिन जानूंगा, उस दिन मेरा सुख समाप्त हो जायगा। काम्यवस्तु का स्वरूप जान लेने से किसको सुख रहता है?

तुमको क्या मैं नहीं पाऊंगा? कितने दिन तुम काँच के भीतर रहोगे?

मैं काँच तोड़ न सकूंगा? अच्छा, रहो—मैं नहीं छोड़ूंगा—मैं फिर आऊंगा? "वों—ओ—ओ—"

पतंग उड़कर चला गया।

नसीराम बाबू ने पुकारा—"कमलाकान्त", मैं चौंक पड़ा, ताकने लगा-शायद बहुत ही ऊंघने लगा था। किन्तु गौर से देखने पर नसीराम को पहचान न सका। देखा, मालूम हुआ, जान पड़ने लगा, जैसे वह वों—वों करके कुछ कह रहा है। अब से मुझे यही मालूम होने लगा कि सभी मनुष्य ही पतंग हैं। सबकी एक एक आग है। सभी उसी आग में जल मरना चाहते हैं। सभी समझते हैं कि, उस आग में मरने का उसको अधिकार है। कोई मर जाता है—कोई काँच से टकरा कर लौट आता

है। ज्ञान की आग, धन की आग, मान की आग, रूप की आग, कर्म की आग, इन्द्रियों की आग,—संसार अग्निमय है। फिर संसार काँचमय है। जिस प्रकाश को देखकर हम मोहित होते है—मोहित होकर जिसमें कूदने जाते हैं—कहाँ? उसको तो हम नहीं पाते, फिर लौट कर बों करके चले जाते है। फिर लौटकर उसी के आसपास चक्कर काटते हैं। काँच न रहता तो अबतक यह संसार जल जाता। यदि सभी धर्मवित् चैतन्यदेव की तरह धर्म को मानस—प्रत्यक्ष से देख पाते, तो फिर कितने मनुष्य बचते? बहुतेरे ज्ञानवह्नि के आवरण-काँच से टकराकर रक्षा पाते हैं। साक्रटिस, गैलेलिओ भी उसमें जल मरे थे। बहुत से लोग रूपवह्नि, धर्मवह्नि, मानवह्नि में जलकर मर रहे हैं, यह हम लोग अपने नेत्रों से देख रहे हैं। इस वह्नि का दाह जिसमें वर्णित होता है, उसे काव्य कहते हैं। महाभारत-कार ने मानवह्नि की सृष्टि करके दुर्योधन-पतंग को जला दिया, जगत में अतुल्य काव्यग्रन्थ तैयार हो गया। ज्ञानवह्नि-जात दाह का गीत है "Paradise Lost"। धर्मवह्नि के अद्वितीय कोप है सेंट पाल। योगवह्नि के पतंग हैं, "एण्टोनी, क्लिओपेट्रा। रूपाग्नि के हैं "रोमियो और जूलियट". ईर्षाग्नि का है "ओथेलो"। गीतगोविन्द और विद्या-सुन्दर में इन्द्रियाग्नि जल रही है। स्नेहाग्नि में सीता-पतंग के दाह से रामायण की सृष्टि हुई वह्नि या आग क्या है, हम लोग नहीं जानते। रूप, तेज, ताप, क्रिया, गति इन सब शब्दों का कोई अर्थ नहीं है। यहाँ दर्शन हार मान लेता है, विज्ञान हार मानता है, धर्म पुस्तकें हार मानती हैं। ईश्वर क्या है, धर्म क्या है, स्नेह क्या है? वह क्या है, हम कुछ भी नहीं जानते। तो भी अलौकिक अपरिज्ञात पदार्थ के आसपास चक्कर काटते फिरते हैं। हम पतंग नहीं तो क्या हैं?

देखो भाई पतंगों के दल! घूमते रहने से कोई फल नहीं है। मर सको, तो आग में जल जल कर मरो, न सको तो, चलो, हम बों करके चले जायँ।

श्री कमलाकांत चक्रवर्ती

पञ्चम संख्या

मेरा मन

मेरा मन कहाँ गया ? किसने लिया ? कहाँ, जहाँ मेरा मन था, वहाँ तो वह नहीं है , जहाँ मैंने रख दिया था, वहाँ नहीं है। किसने चुरा लिया ? कहाँ सात द्वीपों में ढूंढ़कर अपने "मन चोर" को मैं न पा सका। तो उसे किसने चुराया !

एक मित्र ने कहा—"देखो, रसोईघर ढूंढ़ कर देखो। वहाँ तुम्हारा मन पड़ा रह सकता है।" मानता हूं, रसोई के घर में मेरा मन पड़ा रहता था। जहाँ पोलाव-कबाब-कोफ्ते की सुगन्ध रहती है, जहाँ डेकची-समारूढ़ अन्नपूर्णा की मृदु मृदु, फुट्-फुट् बुट-बुट टकबका ध्वनि होती थी, वहीं मेरा मन पड़ा रहता था। जहाँ इलिश मछली सतैल अभिषेक के बाद झोलगंगा में स्नान करके, मृण्मय, कांस्यमय, कांचमय, रजतमय सिंहासन पर बैठ जाती हैं, वहीं मेरा मन प्रणत होकर पड़ा रहता है; भक्तिरस से अभिभूत होकर उस तीर्थस्थान को फिर छोड़ देना नहीं चाहता। जहाँ छागनन्दन द्वितीय दधीचि की भांति परोपकारार्थ अपनी हड्डियां समर्पण करते हैं, जहां मांस संयुक्त उस अस्थि में कोरमारूप वज्रनिर्मित होकर क्षुधारूप वृत्रासुर के वध के लिए तैयार रहता है, उसी जगह मेरा मन इन्द्रत्व लाभ के लिए पड़ा रहता है। जहाँ पाचक रूपी विष्णुद्वारा पूड़ीरूप सुदर्शन चक्र छोड़ा जाता निकाला जाता है, अथवा जिस आकाश में पूड़ी-चन्द्र का उदय होता है, वहाँ ही मेरा मनराहु जाकर उसको ग्रास करना चाहता है। दूसरे लोग जिसको कहना चाहें कहें, मैं पूड़ी ही को अखण्ड मण्डलाकार कहता हूं। जहाँ 'सन्देश' रूप शालग्राम विराजते हैं, मेरा मन वहीं उनका पूजक है, हालदार लोगों के घर की राममणि देखने में अति कुरूपा है और उसकी अवस्था साठ साल की है, किन्तु वह रसोई अच्छी पकाती है और परोसने में खुले हाथ का व्यवहार करती है, इस कारण मेरे मन ने उसके साथ प्रेम करना चाहा था। केवल राममणि का सज्ञान हालत में गंगा लाभ हो जाने से यह काम न हो सका था।

सुहृद् के कहने से रसोई घर में मैंने मन को ढूंढ़ा, वहाँ उसे न पा सका। पूछने पर पुलाव-कवाव-कोफ्ता प्रभृति अधिष्ठाता देवताओं ने कहा—उनमें से किसी ने मेरा मन नहीं चुराया है।

मित्र ने कहा—"एक वार प्रसन्न ग्वालिन के यहाँ पता लगालो।" प्रसन्न के साथ मेरा कुछ प्रेम था जरूर, किन्तु यह प्रेम केवल गव्य-रसात्मक था। किन्तु प्रसन्न देखने-सुनने में मोटी ताजी, गोल-गाल, उम्र में चालीस के नीचे, दाँतों में मिस्सी, हंसी से भरा हुआ चेहरा, ललाट पर एक छोटा सा गोदना बिन्दी की तरह दिखाई पड़ रहा था। वह रस की हंसी रास्ते में बिखेरते बिखेरते चलती थी, मैं उसे बटोर लेता था, इसलिए लोग मेरी निन्दा करते थे। पुजारी बाम्हन के अत्याचार से पौधे में फूल खिलने नहीं पाते, और निन्दकों के अत्याचार से प्रसन्न के सामने मेरा मुंह खुलने नहीं पाता, नहीं तो गव्यरस में और काव्य रस में अच्छी तरह लेन-देन चल सकता था। इससे मैं अपने लिए विशेष दुःखित होऊँ या न होऊँ, प्रसन्न के लिए अवश्य कुछ दुखित हूं, क्योंकि प्रसन्न सती साध्वी पतिव्रता है। यह बात मैं मुंह खोलकर कह नहीं पाता। एक बार कह दिया था, इसलिये मोहल्ले के एक बुद्धिभ्रष्ट लड़के ने इसका उलटा अर्थ निकाला था, उसने कहा प्रसन्न है, इस कारण सत् या सती जरूर है, वह साधु घोष की स्त्री है, इसलिए साध्वी और विधवावस्था में भी पति-विहीन नहीं है, इसलिये घोर पतिव्रता है, यह कहना अनावश्यक है कि, जैसे अशिष्ट बालक ने यह घृणित अर्थ मुंह से निकाला था, उसको सीख देने के लिए उसके गाल पर मैंने थप्पड़ लगा दिया था, किन्तु उससे मेरा कलंक दूर नहीं हुआ।

जब लिखने लगा हूं, तब स्पष्ट बात कह देना अच्छा है—मैं प्रसन्न का जरा अनुरागी अवश्य हूं, इसके अनेक कारण हैं। पहला यह कि प्रसन्न जो दूध देती है, वह निर्जल रहता है और सस्ते दाम में मिलता है। दूसरा यह कि, वह कभी कभी मुझे खीर, मक्खन बिना मूल्य दे जाती है, तीसरा यह कि, उसनें एक दिन मुझसे कहा था कि—"दादा जी, पोथे में यह कैसा कागज है?" मैंने पूछा—"तू सुनेगी?" उसने

कहा "सुनूंगी।" मैंने उसको कई निबन्ध पढ़ कर सुनाये—उसने बैठकर सुना। इतने गुणों से कौन लेखक का धन्धा करने वाला व्यक्ति वशीभूत नहीं होता? प्रसन्न के गुणों की बात और अधिक क्या बताऊं, उसने मेरे अनुरोध से अफीम खाना सीख लिया था।

इन सब गुणों से मेरा मन कभी कभी प्रसन्न के मकान की खिड़की के आसपास घूमता फिरता रहता था, इसे मैं स्वीकार करता हूं। किन्तु केवल उसके मकान की खिड़की के पास नहीं, उसकी गौशाला के अड्गड़े के पास भी वह झाँकता था। प्रसन्न के प्रति मेरा जैसा अनुराग था, उसकी मंगला नामक गाय के प्रति भी वैसा ही था। एक थी खीर मलाई मक्खन का आकर और दूसरी उसको देने वाली। गंगा ने विष्णु पद से जन्म ग्रहण अवश्य किया था, किन्तु पृथ्वी पर भगीरथ ही उनको लाये हैं। मंगला मेरा विष्णुपद है, प्रसन्न मेरा भगीरथ है। मैं दोनों को समान प्यार करता हूं। प्रसन्न और उसकी गाय दोनों ही सुन्दरी हैं, दोनों ही स्थूलांगी हैं, लावण्यमयी हैं और घटस्तनी हैं। एक गोरस उत्पन्न करती है, दूसरी हास्यरस की सृष्टि करती है। मैं दोनों के ही हाथ बिना मूल्य बिक गया हूं।

किन्तु आज कल पता लगाकर मैंने देख लिया कि, प्रसन्न की खिड़की के पास अथवा उसकी गौशाला में मेरा मन नहीं है। मेरा मन कहाँ चला गया!

रोते रोते मैं रास्ते में निकल पड़ा। मैंने देखा एक युवती जल का घड़ा बगल में लिये जा रही है। उसके चेहरे पर गहरी काली झूलती हुई कुंचित केशराशि दिखाई पड़ रही है, घनी काली-काली दोनों भौंहें हैं, और अत्यन्त उज्ज्वल नयनतारा देखकर मालूम हुआ, मानों कमलवन में कुछ भौंरे चक्कर लगा रहे हैं—बैठते नहीं, उड़ते हुए घूम रहे हैं, उसके चलने में अंग जिस तरह हिल रहे थे उससे यही मालूम हुआ मानो लावण्य की नदी में छोटी छोटी लहरें उठ रही हैं उसके प्रति पदक्षेप से मालूम हुआ मानों छाती के अस्थिपंजर तोड़ती हुई वह चली जा रही है। उसको देखकर मुझे यही जान पड़ा कि, निस्सन्देह इसी ने

मेरा मन चुरा लिया है । मैं उसके साथ साथ चल पड़ा । उसने घूमकर देख लिया, जरा रुष्ट भाव से पूछा—"यह क्या हो रहा है ? मेरा पीछा क्यों कर रहे हो ?"

मैंने कहा—"तुमने मेरा मन चुरा लिया है ।"

युवती ने कटूक्ति की गाली दी । कहा—"मैंने चोरी नहीं की है । तुम्हारी बहिन ने मुझे जांचने के लिये दिया था । मैंने मोलभाव करके वापस कर दिया है ।"

तभी से शिक्षा मिल गई । अब मन की खोज में मजाक करने का प्रयास मैं नहीं करता । किन्तु मन ही मन समझ गया हूं कि, इस संसार में मेरा मन कहीं भी नहीं है । दिल्लगी नहीं करता हूं, किसी में भी मेरा मन नहीं है । शारीरिक सुख-स्वच्छन्दता में मेरा मन नहीं है; मैं जिस रहस्यालाप का रसिक था, उस रहस्यालाप में मेरा मन नहीं है । मेरे पास कुछ फटी पुरानी पोथियां थीं—उनमें मेरा मन रहता था । उनमें भी मेरा मन नहीं है । अर्थ-संग्रह में कभी नहीं था—अब भी नहीं है । किसी में मेरा मन नहीं है—मेरा मन कहां चला गया !

मैं समझ गया । जो लोग लघुचेता हैं, उनके मन का बन्धन रहना चाहिये, नहीं तो मन उड़ जाता है । मैंने कभी किसी चीज में भी अपने मन को नहीं बांधा, इसीलिये किसी भी चीज में मेरा मन नहीं है । इस संसार में हमलोग क्या करने आते हैं, यह मैं ठीक बता नहीं सकता—किन्तु मालूम होता है कि, केवल मन को बन्धन में डालने के ही लिये हम आतेहैं । मैं चिरकाल अपना ही रह गया, दूसरों का नहीं हुआ, इसी कारण पृथ्वी में मुझे सुख नहीं है । जो लोग स्वभावतः नितान्त आत्मप्रिय हैं, वे भी विवाह करके, संसारी होकर स्त्री पुत्रों को आत्मसमर्पण कर देते हैं, इस कारण वे लोग सुखी हैं । नहीं तो वे किसी तरह भी सुखी न होते । मैंने बहुत अनुसन्धान करके देखा है दूसरों के लिये आत्मत्याग करने के अतिरिक्त पृथ्वी में स्थायी सुख का कोई दूसरा मूल नहीं है । धन, यश, इन्द्रियादि से मिलने वाला सुख तो है अवश्य, किन्तु वह स्थायी नहीं है, ये सब पहिली बार जिस तरह सुखदायक होते हैं, दूसरी बार उस परि-

माण में नहीं होते, तीसरी बार और भी कम सुखदायक होते हैं। क्रमशः अभ्यास हो जाने से उनमें कुछ भी सुख नहीं रह जाता। सुख नहीं रहता, किन्तु असुख या दुख के दो कारण उत्पन्न हो जाते हैं। प्रथमतः अभ्यस्त वस्तु के भाव से सुख भले ही न हो, अभाव से गुरुतर असुख होता है, और अपरितोषणीय आकांक्षा की वृद्धि से यन्त्रणा होती है। इसलिए इस पृथ्वी में जो सब काम्य वस्तुओं के नाम से चिर-परिचित हैं, वे सभी अतृप्तिकर और दुःख का मूल हैं। सभी स्थानों में निन्दा यश की अनुगामिनी होती है। इन्द्रियसुख का अनुगामी रोग है। धन के साथ क्षति और मनस्ताप रहता है। सुन्दर शरीर जराग्रस्त या व्याधि दूषित हो जाता है, सुनाम में भी मिथ्या कलंक फैल जाता है। धन का भोग अपनी पत्नी का उपपति भी करता है। मान-सम्भ्रम शरत् के बाद मेघमाला की तरह फिर नहीं रहते। विद्या तृप्ति नहीं देती, वह केवल अन्धकार से गहरे अन्धकार में ले जाती है, इस संसार की तत्व जिज्ञासा को नहीं पूरा करती, अपना पूरा उद्देश्य करने में विद्या कभी समर्थ नहीं होती। कभी तुमने सुना है, किसी ने कहा है कि मैं धनोपार्जन करके सुखी हो गया हूं या यशस्वी होकर सुखी हो गया हूं। जो भी इन कुछ पंक्तियों को पढ़े, वही अच्छी तरह स्मरण करके देख ले, कभी ऐसा उसने सुना है या नहीं।

मैं शपथ करके कह सकता हूं कि किसी ने ऐसी बात कभी नहीं सुनी है। धनमानादि की व्यर्थता का इससे बढ़कर गुरुतर प्रमाण और क्या मिल सकता है? आश्चर्य की बात यह है कि, ऐसा अकाट्य प्रमाण रहने पर भी मनुष्यमात्र ही उनके लिए जान देते हैं। यह केवल कुशिक्षा का गुण है। माता के दूध की घुट्टी के साथ ही शिशु के हृदय में धनमानादि ही सब कुछ है—ऐसा विश्वास बसेरा करने लगता है। शिशु देखता है, दिनरात पिता, माता, भ्राता, बहिन, गुरु, भृत्य, प्रतिवेशी, शत्रु, मित्र सभी जी जान से हाय धन! हाय यश! हाय मान! हाय सम्भ्रम! कहते घूम रहे हैं, इसलिए शिशु मुंह से बोली निकालने के पहले ही उस राह से चलना सीखता है। कब मनुष्य स्थायी नित्य सुख के एक मात्र मूल को

खोजकर देखेगा। सब विद्वान, बुद्धिमान्, दार्शनिक, संसारतत्ववेत्ता हैं, चाहे जितनी डींग हाँकें, उछल कूद मचावें, वे सभी मिलकर देखें, दूसरों का सुख बढ़ाने के अतिरिक्त मनुष्य के सुख का मूल और कुछ है या नहीं? नहीं है। मैं मरकर जलकर राख हो जाऊंगा, मेरा नाम तक लुप्त हो जायगा, किन्तु मैं मुक्त कंठ से कह रहा हूं. एक दिन मनुष्यमात्र मेरी यह बात समझ जायेंगे कि इसके सिवा मनुष्य के स्थायी सुखका दूसरा मूल नहीं है। यही जिस तरह लोग उन्मत्त होकर धन-मान-भोगादि की तरफ दौड़ पड़ते है, उसी तरह एक दिन मनुष्य जाति उन्मत्त होकर दूसरों के सुख की तरफ दौड़ने लगेगी। मैं मरकर राख हो जाऊंगा, किन्तु मेरी यह आशा एक दिन फलवती होगी। किन्तु कितने दिनों में ? हाय कौन बतावेगा, कितने दिनों में ?

यह बात पुरानी है। ढाई हजार वर्ष पहले शाक्यसिंह यह बात कितने प्रकार से कह गये हैं। उसके बाद शतसहस्र शिक्षकों ने शतसहस्र बार यही शिक्षा दी है। किन्तु किसी प्रकार भी लोग नहीं सीखते—किसी तरह भी आत्मादर का इन्द्रजाल काटकर ऊपर नहीं उठ सकते। फिर हमारा देश अंग्रेजी मुल्क हो गया है, इस कारण इस विषय में बहुत गड़बड़ी उपस्थित हो गयी है। अंग्रेजी शासन, अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी शिक्षा के साथ साथ मेटीरियल प्रास्पेरिटी * के ऊपर अनुराग आजाने से देशका उजड़ना शुरू होगया है। अंग्रेज जाति बाह्य सम्पद बहुत पसन्द करती है—अंग्रेजी सभ्यता का यही प्रधान चिह्न है—वे यहाँ आकर इस देश के बाह्य सम्पद साधन में ही लगे हैं—उसी को प्यार करके हमलोग और सभी बातों को भूल गये हैं। भारतवर्ष की अन्यान्य सभी देवमूर्तियाँ मन्दिर-च्युत हो गई है। सिन्धु से लेकर ब्रह्मपुत्र तक केवल बाह्यसम्पद की पूजा आरम्भ हो गई है। देखो, कितने व्यापार बढ़ रहे हैं; देखो किस तरह रेलवे के जाल से हिन्दू भूमि घिर गई है!—देख रहे हो, टेलीग्राफ कैसी चीज है! देख रहे हो, किन्तु कमलाकान्त पूछता है कि तुम्हारे रेलवे-टेलीग्राफ से मेरे मन का सुख कितना बढ़ेगा? मेरा जो मन खो गया है,

* बाह्यसम्पद

वह क्या ढूँढ लाकर मुझे दे सकोगे ? किसी के मन की आग बुझा सकोगे ? वह जो कृपण धन की प्यास से मर रहा है, उसकी प्यास मिटा सकोगे ? अपमानित को उसका मान क्या वापस दिला सकोगे ? रूपोन्मत्त की गोद में सुन्दरी को उठाकर बैठा सकोगे ? यदि ऐसा न कर सको, तो अपने रेलवे-टेलीग्राफ आदि को उखाड़कर जलमें फेंक दो—कमलाकान्त शर्मा इसमें अपनी कोई हानि न समझेगा।

चाहे अंग्रेजी हो, चाहे बँगला, समाचारपत्र, सामयिक पत्र, स्पीच, डिबेट, लेक्चर जो कुछ भी पढ़ता या सुनता हूं, उसमें इस बाह्य सम्पद् के अतिरिक्त और किसी विषय की कोई बात मुझे देखने को नहीं मिलती। हर हर बम बम ! बाह्य सम्पद् की पूजा करो। हर हर बम बम ! रुपये के ढेरों पर रुपये ढाल दो। रुपये में है भक्ति, रुपये में है मुक्ति, रुपये में है मति, रुपये में है गति। रुपया धर्म है, रुपया अर्थ है, रुपया काम है, रुपया मोक्ष है। उस मार्ग से मत जाओ, देश का रुपया घटेगा; उस मार्ग से जाओ, देश का रुपया बढ़ेगा। बम बम हर हर ! रुपया बढ़ाओ, रुपया बढ़ाओ रेलवे टेलीग्राफ अर्थ उत्पन्न करते हैं, उस मन्दिरको प्रणाम करो ! ऐसा करो, जिससे रुपया बढ़ सके; आकाश से रुपये की वर्षा होती रहे ! रुपये की झनकार से भारतवर्ष भर जाय। मन ! मन ! फिर क्या है ? रुपये के अतिरिक्त मन क्या है ? रुपये के बिना हम लोगों का मन नहीं है। टकसाल में हमारा मन टूटता है, बनता है। रुपया ही है बाह्य सम्पद् ! हर हर बम बम ! बाह्य सम्पद् की पूजा करो। इस पूजा में ताम्रवर्ण की दाढ़ी रखनेवाले अंग्रेज नामक ऋत्विगण पुरोहित हैं; एडमस्मिथ पुराण और मिलतन्त्र से इस पूजा का मन्त्र पढ़ना पड़ता है। इस उत्सव में सब अंग्रेजी समाचार पत्र बड़े ढोल हैं, बँगला समाचार पत्र घड़ी-घंट बजाने वाले हैं, शिक्षा और उत्साह इसमें नैवेद्य है, और हृदय इसमें छाग-बलि है। इस पूजा का फल इहलोक और परलोक में अनन्त नरक है। तो फिर आओ, यशोगङ्गा के जल से धोकर, वञ्चना-बिल्वदल और मीठे वचनों का चन्दन चढ़ाकर इस महादेव की हम पूजा करें। बोलो हर हर बम-बम। बाह्य सम्पद् की हम पूजा करें। बजा भाई बड़ा-ढोल—डम,

ढम, ढमाढम ढम। झाँझ बजाने वाले, झन-झन, झनाझन झनाझन! आइये पुरोहित महाशय! मन्त्र पढ़िये। हमारा यह बहुत दिनों का पुराना घी लेकर स्वाहा स्वाहा कह कर आग में डालिये। कहाँ हो भाई यूटिलिटेरियन लुहार! बकरे को बलिके यूप-काष्ठ पर चढ़ा दिया है। एक बार वाक्य पंचानन्द * का नाम लेकर एक ही चोट मारकर काट डालो। हर हर बम बम। कमलाकान्त खड़ा है। मुण्ड दे देना! तुम लोग स्वच्छन्दता से पूजा करो।

पूजा करो, हानि नहीं है, किन्तु मुझे दो चार बातें समझा दो। तुम्हारी बाह्य सम्पद् से कितने अभद्र भद्र हो गये हैं? कितने अशिष्ट शिष्ट हो गये हैं? कितने अपवित्र पवित्र हो गये हैं? एक भी नहीं। यदि न हुए हों तो तुम्हारी इस राख को हम नहीं चाहते। मैं हुक्म दे रहा हूं, इस राख को भारतवर्ष से तुम हटा दो।

तुम लोगों की बात मैं समझता हूँ। उदर नामक बृहत् गह्वर है, उसे प्रतिदिन भर देना चाहिये; नहीं तो काम न चलेगा। तुम लोग कहते हो, हम इसी चेष्टा में हैं कि सभी का यह गढ़ा अच्छी तरह भर सके। मैं कहता हूं, यह मंगल की बात अवश्य है, किन्तु उसमें इतनी ज्यादती करने की जरूरत नहीं है। गढ़े को भरने में तुम लोग इतने व्यस्त हो गये हो कि दूसरी सभी बातों को भूल गये हो। वरन् इससे अच्छा तो यही है कि गढ़े का एक कोना खाली छोड़ दिया जाय, दूसरी दूसरी तरफ भी जरा मन लगा देना उचित है। गढ़े को भर देने के अतिरिक्त मन का सुख एक अलग चीज़ है; उसकी बृद्धि का क्या कोई उपाय नहीं हो सकता? तुम लोग इतने यन्त्र तैयार कर रहे हो, मनुष्य के साथ मनुष्य का प्रेम बढ़ाने के लिये क्या कोई कल (यन्त्र) नहीं बन सकती? जरा बुद्धि लगाकर देखो, नहीं तो बेकल हो जाओगे।

---

* पंचानन नाम प्रसिद्ध नहीं है—पंचानंद ही प्रसिद्ध है। मद्य, मांस, गाड़ी-जोड़ी, पोशाक और वेश्या—पाँच आनन्द यही हैं नूतन पंचानन्द।

मैं चिरकाल केवल गढ़ा भरता आया हूँ—कभी दूसरों के लिये मैंने नहीं सोचा। इसलिए सब कुछ खोकर बैठा हूं—संसार में मुझे सुख नहीं है, संसार में अपने रहने का अब प्रयोजन मैं नहीं देखता। दूसरों का बोझ अपने कंधे पर क्यों रखूं ? यही सोच कर मैं गृहस्थ नहीं बना। उसका फल यह हुआ कि किसी में मेरा मन नहीं है। मैं सुखी नहीं हूं, क्यों होऊँ ? मैं दूसरों के लिए जिम्मेदार नहीं बना, सुख में मेरा अधिकार क्या है ?

सुख में मेरा अधिकार नहीं है; किन्तु इसीलिए तुम यह मत समझ लेना कि तुम लोग विवाह कर लेने के कारण सुखी हो गये हो। यदि पारिवारिक स्नेह के प्रभाव से तुम लोगों की आत्मप्रियता लुप्त न हो गयी हो, यदि विवाह के कारण तुम लोगों का चित्त मार्जित न हो गया हो, यदि अपने परिवार से प्यार करके सारी मनुष्य जाति को प्यार करना तुम लोगों ने न सीख लिया हो, तो, झूठमूठ का विवाह किया है। केवल भूत का बोझ ढोरहे हो। इन्द्रिय परितृप्ति या पुत्रमुख निहारने के लिए विवाह नहीं होता। यदि विवाह हो जाने से मनुष्य-चरित्र का उत्कर्ष नहीं होता, तो फिर विवाह को आवश्यकता नहीं है। इन्द्रियादि अभ्यास के वश में हैं; अभ्यास से ये सभी एकदम शान्त रह सकते हैं। वरन् मनुष्य-जाति इन्द्रियों को वशीभूत करके यदि संसार से लुप्त भी हो जाय, तथापि जिस विवाह से प्रीति शिक्षा नहीं होती, उस विवाह की कोई उपयोगिता नहीं है।

अब कमलाकान्त हाथ जोड़ कर सब से निवेदन कर रहा है, तुम लोगों में से कोई क्या कमलाकान्त का एक विवाह करा सकते हो ?

षष्ठ संख्या

चन्द्रालोक में

दूब और घास से सुशोभित हरित् क्षेत्र में, कल कल बहती भागीरथी के तटपर, इस बिखरी हुई चाँदनी में आज मैं पोथे की श्री-वृद्धि कलेवर-वृद्धि करूँगा। ऐसी चाँदनी में ही तो ट्रैलस शर्मा द्राय की

ऊंची दीवार पर चढ़कर, कीसीदा को स्मरण करके ऊष्ण श्वास छोड़ते थे? ऐसे ही चन्द्रालोक में तो थिसबी सुन्दरी मृदु, शिशिरपातसिक्त दूब को कोमल पैरों से रौंदती पिरामेस के संकेत स्थल की तरफ अभिसारिणी बनकर जाती थी? अभिसारिणी शब्द में 'अभि' एक उपसर्ग है और स्त्रीत्ववाचक एक 'इनी' है। इस जीवन में कमलाकान्त शर्मा ने कितने उपसर्ग देखे हैं; कितनों की धातु को बिगड़ते-बनते देखा है, कितनी इनियाँ भी आयीं गयीं, किन्तु सोपसर्ग विशिष्ट एक इनी को भी मैंने कभी नहीं देखा। कमलाकान्त के उपसर्ग में किसी इनी की धातु बिगड़ नहीं गयी, कमलाभिसारिणी ऐसी नायिका कभी नहीं हुई। जो दही दूध बेचने के लिए आती हैं, उनको श्रीमद्‌भागवत में "पसारिणी" कहा गया है, कभी अभिसारिणी कहा है, ऐसा स्मरण नहीं होता। ऐसा यदि कहा जाता तो मैं कह सकता था कि अनेक अभिसारिणी मैंने देखी हैं।

चन्द्र! तुम हँस रहे हो? हँस हँस कर मडरा रहे हो। अपनी सत्ताईस इनियों के साथ मेरी तरफ आँखों से इशारा करके मेरा उपहास कर रहे हो? राजा दक्ष का जैसा कर्म है—एक दम सत्ताईस एक चन्द्रमा को समर्पण कर दीं, और अब कमलाकान्त शर्मा विवाह के लिए लालायित हैं। अमल धवल-किरणराशि सुधांशो! और बाकी सभी को अपने पास रहने दो, कम से कम अश्लेषा व मघा को छोड़ दो। मैं इन दोनों को बहुत प्यार करता हूं। मेरी तरह निकम्मा मनुष्य उनकी कृपा से कम से कम दो दिन गृहवाससुख का उपभोग कर सकता है। मैं उन दोनों बहनों को अपने भवन में चिरकाल के लिए स्थान देकर सुख से समय बिताऊंगा। उनमें और भी अनेक गुण हैं। लोग अपनी शक्तिहीनता के कारण कोई काम न कर सकने की हालत में उनकी दोहाई देकर लोगों के सामने स्वच्छन्दता से ताल ठोक सकते हैं। मैं भी यदि नसी बाबू के कपड़े खरीदने में अपनी निर्बुद्धिता के कारण ठगा जाऊं, तो अपनी दोनों सहधर्मिणियों के कंधे पर सारा दोषारोपण करके सफाई दे सकूंगा।

चन्द्रदेव ! तुमने मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया। अब भी मन्दाकिनी के मन्द-मन्द हिलते हुये आँचल को अपनी किरणों के स्पर्श से तुम चमका रहे हो ? क्या अब भी तुम मन्द समीरण के साथ परामर्श करके वृक्षों के अग्रभाग पर पल-पल में झलक बरसाते रहोगे ? अब भी तृण क्षेत्रों में मणि-मुक्ता-मरकतों को अकातर भाव से बिखेर दोगे ? वन के फूस में और कोई मोती बिखेर दे या न बिखेर दे, मैं देखता हूं कि, तुम बिखेर देते हो; और आज मैं बिखेर दूंगा।

इस संसार के लोगों ने, इस बल्लालसेन के प्र-परा—अप पौत्रों ने और उनके निर्-दुर-वि-अधि दौहित्रों ने मुझे परेशानी में डाल दिया है। मेरी छाती के ऊपर विश्वविद्यालय स्थापित हो गया है। बी० ए० न होने से विवाह नहीं होता। इस बार गृहस्थी डूब चली। ऊंची शिक्षा का फल क्या है ? पलंग चाँदी की कलसी, रेशमी धोती और स्वर्णालंकार-भूषिता, पट्टवसनावृता एक वंश खण्डिका। हरि हरि बोलो भाई ! तृणग्राही, पाण्डित्याभिमानी, बी०ए० उपाधिधारी उच्च शिक्षा प्राप्त नवीन बंगवासी का कलसी-वस्त्र-वंश-खट्टा समेत सज्ञान अवस्था में गङ्गा लाभ हो गया !!!(*) पहले उनको उपाधि मिली थी, इस बार वे समाधि पा गये। वे विलायती ब्रह्म में लीन हो गये। बङ्गीय युवक संसारी हो गये। उनकी उच्च शिक्षा ने उनको उनके चरमधाम को पहुँचा दिया है। उनको एक हजार तोले के वजन के चाँदी के बरतन, एक सौ तोले के वजन के स्वर्णालङ्कार और संसार-कुटीर की एक मात्र दण्डिका एक वंश खण्डिका मिल गयी है, उनको अपनी चिरवांछित हेमकूट पर्वत के समीप किष्किन्धापुरी की सरकारी वकालत मिली है, हरि हरि बोलो भाई ! इतने दिनों में उनको समाधि मिल गई !!! उन्होंने उच्च शिक्षा पाने के लिए बड़े यत्न से कामस्कट का देश की सभी नदियों के नाम कंठस्थ कर लिये थे। इस उच्च शिक्षा के निमित्त उन्होंने निशीथ प्रदीप में एकासन से सहारा मरुभूमि के बालुका पुंज की संख्या सुनिश्चित

(*) मालूम होता है कि इसी बात से कमलाकान्त का नशा बहुत ज्यादा चढ़ गया था। श्री भीष्म देव खुशनवीस

करली थी। इस उच्च शिक्षा के ही लिए उन्होंने सालोमन की पहले की बावन पीढ़ियों और बाद की साढ़े तिरपन पीढ़ियों की वंशावली कंठस्थ करली थी। इस उच्च शिक्षा के बल से उन्होंने सीख लिया है कि, टाउन हाल में वक्तृता कर सकने में ही परम पुरुषार्थ है। जिस किसी प्रकार से अंग्रेजों की निन्दा कर सकने से ही राजनीति का चरम फल मिल गया। और वंशदण्डिका की स्थापना करके, उम्मेदवार-कुल की वृद्धि करके देश को जंगलमय कर देने से ही कलि के जीवधर्म की चरितार्थता हो गयी।

मैं वंशदण्डिका के लिये ऐसे प्रयास का इच्छुक नहीं। मैं वसीयत-नामा लिख जाऊंगा, सात पीढ़ियों तक विवाह न करना पड़े, तो न सही, तथापि ऐसी वंशदण्डिका के आश्रय से स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा भी किसी को न करनी चाहिये। यदि जीव प्रवाह वृद्धि करना ही विवाह का उद्देश्य हो तो मैं मछली आदि, के साथ विवाह करूंगा; यदि रुपये के लिए विवाह करने की जरूरत हो, तो मैं टकसाल के अध्यक्ष के साथ विवाह करूंगा, और यदि सौन्दर्य के निमित्त विवाह करना पड़े तो मैं घूंघट काढ़ने वाली चन्द्रवदनियों को प्रणाम करके उस आकाश के चन्द्रमा के साथ विवाह करूंगा।

भागीरथि! तुम यदि शान्तनु राजा के वक्षस्थल पर अथवा उसकी अपेक्षा उच्चतर हिमालय भवन में, अथवा और ऊंचाई के धूर्जटि के जटाकलाप पर विराजती रहतीं, तो उस हालत में आज कौन तुम्हारी उपासना करता? तुम निम्नगामिनी होकर मर्त्यलोक में उतर कर, सहस्र धाराओं में सागर को लक्ष्य करके चल पड़ी थीं, इसी कारण सगर वंश का उद्धार हुआ है। समीर! यदि तुम अञ्जनी का आंचल लेकर चिरक्रीड़ासक्त बने रहते अथवा मलयाचल में अपने प्रमोद भवन में चन्दन शाखाओं को झुकाकर अथवा एला-लता को कंपा कर परिभ्रमण करते रहते, तो उस अवस्था में तुमको कौन "त्वमेव जगज्जीवनं पालनं" कहकर तुम्हारी स्तुति करता? इस बालवसंतविहारी विहङ्ग कुल की मधुर बोली यदि केवल नन्दनकानन में प्रतिध्वनित होती तो, उस

अवस्था में कमलाकान्त चक्रवर्ती उनका नाम लेकर इस रात्रिकाल में अपनी स्याही कलम को व्यर्थ बरबाद क्यों करता ? सुधांशो ! यदि तुम क्षीर सागरतल में, अमृत के भण्डार में, प्रवाल के पलंग पर, मोतियों की शय्या पर सोये रहते, तो उस अवस्था में कौन तुम्हारे साथ रमणी-मुख मण्डल की तुलना करता ? अथवा अपनी उन सत्ताईस भार्याओं को बारी-बारी से लेकर निश्चित श्वशुर-मन्दिर दक्ष-गृह में निवास करते, तो उस हालत में क्या आज कमल शर्मा तुम्हारा दर्शनाभिलाषी होकर—इस श्मशान के पास वटवृक्ष के नीचे तीरस्थ होकर निवास करता !

शशि—यदि तुमने व्याकरण पढ़ लिया हो तो, मुझे माफ करना, मैं प्राण रहते शशिन् न कह सकूंगा—मैं अब तक तुम्हारे गुणों पर विचार कर रहा था। शशि ! तुम अनाथा की कुटिया के द्वार पर अनिमेष नेत्रों से बैठे रहते हो, तुतलाता बच्चा भी जब नाचते नाचते तुमको पकड़ना चाहता है, तब तुम उसके साथ नाचते नाचते खेलते रहते हो; बालिका जब स्वच्छ सरोवर हृदय में एक बार तुमको देख लेने पर, फिर एक बार न देखने पर, तुमको देखने के लिए इधर-उधर सरोवर तट पर दौड़ती रहती है, तब तुम एक बार जरा दर्शन देकर उसके साथ केवल आँख-मिचौनी खेलते रहते हो। नववधू जब मन्द वायु के साथ महल की अटारी पर अकेली लम्बी साँस छोड़ती रहती है, तब तुम नारियल के कुंजों की आड़ से अति धीरे धीरे उसका हृदय भरकर अमृत वर्षण करके क्रमशः उसको शीतल करते हो। जब तरंगिनी आशातरंग हृदय में लिये हुए धीरे धीरे बहती हुई सिन्धु की तरफ गमन करने लगती है, तब तुम्हीं उसको स्वर्णाभूषणों से भूषित करके आशीर्वाद देकर पथ-प्रदर्शन करते रहते हो। गुलाब जब वसन्तराग से एक डाल पर से चारों तरफ देखता हुआ हिलता-डोलता रहता है, तब तुम ही उसको मालती-लता को चूमने के लिए कानों में परामर्श देते हो। फिर तुम ही असत् अभिप्राय से कोई मनुष्य जब कुल-कामिनी का धर्मनाश करने में प्रवृत्त हो जाता है, तब अपने कोमल मुख मण्डल से ऐसी भृकुटी-तानते रहते हो कि, वह फिर तुम्हारे मुख की तरफ दृष्टि निक्षेप करने में समर्थ नहीं होता।

तुम ही नरहत्याकारी के तलवार-फलक पर बिजली चमका देते हो, उसके पाप-शोणित विन्दु में चौसठ रौरवों को प्रतिफलित करके दिखा देते हो।

तुम क्रीड़ाशील शिशु की चंचल स्वर्णस्थाली हो। तुम युवकों के आशाप्रदीप हो। युवक-युवतियों के रात्रियापन के प्रधान सम्भोग पदार्थ हो, और बृद्धों के स्मृतिदर्पण हो। तुम अनाथा के प्रहरी हो; तुम स्थिर दीप धारा हो; तुम पथिकों के पथप्रदर्शक हो, तुम गृहस्थों के नैश-सूर्य हो; तुम पाथियों के पापों के साक्षी हो; तुम पुण्यात्मा के नेत्रों में उसकी यशपताका हो। तुम आकाश की उज्ज्वल मणि हो; तुम जगत् की शोभा हो; और इस श्मशानविहारी श्री कमलाकान्त की एक मात्र पूंजी हो। तुम भलों के लिए भले हो, बुरों के लिए बुरे हो, तुम रस के रस हो, तुम विरस के विष हो। तुम कमलाकान्त की सहधर्मिणी हो। शशि—तुमको मैं बहुत प्यार करता हूँ, मैं तुम्हारे ही साथ विवाह करूंगा। सभी हरि हरि बोलो भाई। आज यहीं दिन बिताना है—सभी एक बार हरि हरि बोलो भाई।

बम भोला! चन्द्रमा तो पुरुष है। तो फिर नशे की डबल मात्रा चढ़ाने की जरूरत पड़ गयी।

चन्द्रमा हमारे मत से पुरुष तो जरूर है, किन्तु विलायती शर्मा लोगों के मत से कोमलाङ्गी है। हमारे मत से चन्द्रमा 'ही' है, (*) अंग्रेजी मत से वह 'शी' है, अब उपाय क्या है? ही है या शी इसका निश्चय किस तरह होगा?

वास्तव में इस विषय में संसार के लोगों के साथ मेरा कभी मतैक्य नहीं हुआ। इस वि-य में मुझे तरह तरह के सन्देह होते हैं। जो वाजिद अली शाह लखनऊ नगर से पालकी पर सवार होकर

(*) ही, शी किसको कहते हैं? मैंने सुना है कि ये दोनों अंग्रेजी के सर्वनाम 'वह' हैं—ही है पुल्लिङ्ग — शी है स्त्रीलिङ्ग।

—श्री भीष्मदेव।

मोची खोला में आये हैं, वह बतख-बतखियों, कपोत-कपोतियों को लेकर खेलते हैं, गुलाब के साथ वारिहृद में नित्य स्नान करके, अपने अनुरूप पिंजड़े की बुलबुल को सघृत पुलाव खिलाते हैं, वे 'ही' हैं, या 'शी' हैं ? और जो महारानी देश प्रेम के कारण ऐहिक सुख-सम्पत्ति विसर्जन करके—राज पुरुषों के शरणापन्न होने की अपेक्षा भिक्षा का अन्न अच्छा समझ कर नेपाल के पार्वत्य प्रदेश में आश्रय ले चुकी हैं, वे 'ही' हैं या 'शी' हैं ? तब तो साहस ही को 'ही'—'शी' का भेद निर्णय करने वाला माना जा सकता है न ! तो क्या युद्ध-निपुणता से 'ही'—'शी'—का भेद निर्धारित होगा ? जोन आफ़ आर्क ने ओलियन्स दुर्ग पर आक्रमण करते समय, सबसे पहले पदार्पण किया था, जिसने फ्रान्स का पुनरुद्धार किया था, उसको मैं शी कहूँ या ही कहूँ ? और जिस बेडफोर्ड ने—उनको फंसाने के लिए कारागार में पुरुष का वस्त्र रख दिया था, उसको भी मैं ही कहूँ या शी कहूँ ? नहीं, युद्धकौशल मैं समझ न सका। किन्तु सुना जाता है कि, जो बलवान् है वही पुरुष है, और जो जाति दुर्बल है, वही स्त्री है। ठीक है—कांट ने अपने को नीतिराज्य का सर्वाधिकारी समझ कर, यूरोपीय विद्वन्मण्डली से कर-याचना की थी। उस अतुल प्रतापशाली को जिस मैडम फ्लोतिलड देवी ने अपने प्रताप से वश में कर लिया था, उनको मैं शी कहूँ या ही कहूँ। रोमके नगर में कैसरगण एक एक राज्याधिपति थे, जिस मिस्र देशीय रानी क्लिओपेट्रा ने ऐसे तीन कैसरों के ऊपर राजत्व किया था, उनको मैं शी कहूँ, या ही कहूँ ? वास्तव में, इस संसार में कौन ही है कौन शी है, यह निश्चित नहीं किया जा सकता। उस दिन कीर्तन हो रहा था, जब कीर्तन-गायिका ने कहा—"सिंहिनी बनकर शिवापद की सेवा करूंगी।" और बंङ्गीय नव्य सम्प्रदाय के लोग वज्रस्तब्धवत् चित्रलिखित पुतलियों की तरह उसका मुख निरीक्षण करने लगे थे, तब वास्तव में वह कीर्तन-गायिका मेरी दृष्टि में सिंहवत् प्रतीत हो रही थी, और उन सभी बंगाली युवकों को मैंने शिवा (सियार) स्वरूप समझ लिया था। उस समय यदि कोई मुझसे पूछता कि,

इनमें से कौन हैं ही, और कौन हैं शी, तो मैं अवश्य ही यही कहता कि वह कीर्तनकारिणी ही 'ही' हैं, और जो लोग जड़वत् उनका कीर्तन सुन रहे हैं, वे ही हैं 'शी'। वास्तव में बंगीय युवक गण कहीं ही हैं, कहीं शी हैं, और सर्वत्र विकल्प से 'इट' हो जाते हैं। उसकी नित्य विधि भी है। जैसे मित्रता के हास्य विनोद में 'ही', शय्यागृह में 'शी' और विषय,कर्मों में 'इट'। वे लोग भाषण करते समय हो जाते हैं 'ही', साहब के सामने बन जाते हैं 'शी' और मदिरा पीने पर हो जाते हैं 'इट'। फलतः 'इट' जो कुछ भी हो, 'ही'—'शी' के विषय में आप ही आप मुझे बहुत सन्देह होता है। मधु चटर्जी ने मेरा नाम लेकर एक तरह का व्यंग्य किया था, इस कारण, जिस प्रसन्न ने दूध से भरा घड़ा उसके माथे पर फेंक कर, चटर्जी की छाती की बल परीक्षा के निमित्त किसी प्रकार का विशेष हथियार प्रयोग करने की इच्छा की थी, वही प्रसन्न संसार के मत से हो गयी 'शी'—और मैंने—नसी बाबू ने जबकि एक दिन कहा था,—"चक्रवर्ती! ऊंघते ऊंघते आज तुमने बिछौना जला डाला, किसी दिन तुम अग्निकांड मचा दोगे, यही लक्षण देख रहा हूं'—उसी भय से अफीम की मात्रा कम कर दी थी, वही मैं हो गया 'ही'! ऐसे विचारों के ही कारण संसार के साथ मेरा झगड़ा-झमेला होता रहता है। असल बात यह है कि, जब मैं खुद 'ही' हूँ या 'शी', इसका निश्चय होना कठिन है, तब चन्द्रमा 'ही' है या 'शी', इसका निर्धारण कैसे होगा? यदि चन्द्रमा 'ही' होते हैं, तो मैं हूं 'शी'; क्योंकि मेरे साथ चन्द्रमा का प्रेम उत्पन्न हो गया है, और मुझे चन्द्रमा के साथ विवाह करना ही पड़ेगा। और यदि मैं यथार्थ ही एक कमलाकान्त चक्रवर्ती हूं, तो उस हालत में चन्द्रमा है 'शी'। उस अवस्था में मैं चन्द्रमा के साथ विलायती मत से विवाह करूंगा।

इन दिनों विभिन्न मतों से विभिन्न कार्य हो रहे हैं; मैं विलायती मत से विवाह करूंगा। इस समय दशावतार दशकर्मान्वित हो गये हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह टेबिल की शोभा बढ़ा रहे हैं। नृसिंहराम कमलाकान्त रूप दैत्यकुल के प्रह्लाद गण के आश्रयीभूत हो गये हैं।

वामनावतार बङ्गीय युवक गण, मेरे सोने के चाँद शशी को स्पर्श करने की स्पर्धा करते है। प्रथम राम के स्थान में इन लोगों ने मातृ सेवा, द्वितीय राम के स्थान में पत्नी सेवा और अन्तिम राम के पास इन लोगों ने वारुणी सेवा की शिक्षा ग्रहण की है। इन लोगों ने बौद्धमत से संसार की अनित्यता सुनिश्चित करके, कल्किमत से संहार मूर्ति धारण करली है। वर्तमान काल में शाक्त मत से भोजन का पदार्थ तैयार करके, उसे शैव-त्रिशूल से बिंधकर निगल जाना पड़ता है, उसके बाद सौरपान सेवनीय है। फिर यरुशलम के प्रथम गौराङ्ग के उपदेशानुसार भजनशाला बनाना पड़ता है, नवद्वीपवासी मझले गौराङ्ग की तरह हरि संकीर्तन करना पड़ता है, राधानगर के छोटे गौराङ्ग की तरह संस्कृत श्लोक पाठ करना पड़ता है।

इसलिए शशि, पूर्ण शशि, मैंने तुम को अंग्रेजी मत से 'शी' निश्चित करके, खुशी मन से, स्वस्थ शरीर से, खुश तबियत से इच्छा पूर्वक तुम से विवाह कर लिया, मैं पुत्र-पौत्रादि क्रम से परम सुख से दूसरों की साझेदारी के बिना, तुमको भोग दखल करता रहूँगा। इसमें यदि तुम, अथवा तुम्हारे स्थान पर अभिषिक्त कोई दूसरा कभी आपत्ति करेगा तो, वह नामंजूर हो जायगा। तुम्हारी सत्ताईसों पर आज से मेरा सम्पूर्ण स्वत्वाधिकार हो गया।

और इस प्रकार धीरे धीरे कदम चला चलाकर, ऊंघते ऊंघते रोहिणी के साथ बातचीत करने से क्या होगा? और इस तरह मुसकराकर पतले बादलों का घूंघट खींचकर तुम कितनी दूर चले जाओगे? इति कोर्टशिप समाप्तः—अब है गान्धर्व विवाह। मैंने वरमाला प्रदान कर दी, तुम वरमाला प्रदान करो।

कन्यादाता कन्या बने वरदाता वर।
निजमन पुरोहित, श्मशान कोहबर॥

एक बार हरि बोलो भाई। हरि हरि बोल।

आज से फिर चन्द्रमा को देख कर कमल मुंद न जायगा—कमल को खिलता देख कर अब चन्द्रमा म्लान न होगा। इस बार भारत-

वर्षीय कवियों का कवित्व लुप्त हो गया—पहले—

कमल की आदत थी पहले यह,
चन्द्रहिं देखि के आखें मूंदे।
अब
चन्द्रहिं देखन के मानस से,
कमल की आखें अब खुल जातीं।
केवल काले दाग हैं चन्द्र हृदय में,
किन्तु
केवल उज्ज्वल चन्द्र है कमल हृदय में।

अहा! मैंने अपने चन्द्रमा को खो दिया है। वर बड़ा है या कन्या बड़ी है? यह देखो वर बड़ा है—

सोलह कला समेत जो चन्द्र है,
ह्रास-वृद्धि का यह कारण है।
एक झोंप केलों को लेकर,
चक्रवर्ती हैं पूरण होकर।
उस केले का हाल कहूं क्या,
कभी लुप्त कभी वर्तमान।
कमल के बाग में बात भिन्न है,
वहाँ तो सभी बने वर्तमान।

देखो शशि! इस समय एकान्त हो गया है। तुमको दो चार बातें कहने की इच्छा हो रही है।

तुम अपने रूप गौरव से गर्वित होकर जहाँ तहाँ उस रूप को मत बिखेर दो। जब पुत्रशोकातुरा माता हाथों से छाती पीटती हुई तुम्हारी तरफ लक्ष्य रख कर रोती रहती है, तब तुम उसके सामने रूप दिखाकर क्या करोगी! तब हे कलङ्किनी! तुम अपनी रूप राशि गहरे बादलों की ओट में छिपा रखना। जब संसार-ज्वाला-जाल से दग्ध होकर लोग, तुम्हारे दरबार में आकर अभियोग करेंगे, तब तुम अपने सौन्दर्य का विकास उनके सामने मत करना। जो संसार-दग्ध है, उसके लिए

वह सौन्दर्य तीव्र विप का लेप हो जायगा। वरन् रक्तराग सहित उसके साथ तुम बातचीत करना। उसने सब के प्रति घृणा की है, किसी की भी प्रीति वह सहन न कर सकेगा। और जो ऐहिक चरम सुख की सीमा को भली भांति समझ कर आत्म विसर्जन करने के लिए प्रस्तुत हो गया है, उसको अब व्यर्थ आशा देकर तुम सान्त्वना प्रदान मत करना। तुम इस समय मेरी एक भोग्या हो, तुम और क्या दिखाकर दूसरों को सान्त्वना दोगी? किन्तु कमलाकान्त को समय असमय नहीं है, घटन-विघटन नहीं है, सुख-दुःख नहीं है। तुम सदैव मेरे पास आना, अपनी बातें तुम मुझको सुनाना, मेरी बातें सुनकर जाना, अपने हृदय में अपनी अस्थिमज्जा के साथ उन बातों को मिलाकर रख देना। तुम ज्योत्स्ना-रात्रि में मुझ से मुलाकात करने आ जाना। और कमल-कान्ति लेकर अंधियारी में विचरण मत करना। आज हमारा सुख का दिन है, इसे तुम्हारे और मेरे सिवा कौन समझ सकेगा? आज से मास गणना करके प्रति मास के अन्त में हम दंपति इस गङ्गा के तट पर हरित तृण शय्या तैयार करेंगे। प्रति पूर्णिमा को तुम एकाएक मेरे पास आगमन मत करना, पञ्चाङ्गकारों के साथ शुभ क्षण मुहूर्त्त का परामर्श करके कमलाभिसारिणी हो जाना, नहीं तो एक दिन राहु तुमको बीच राह में अचानक काला कुरूप बना कर क्लेश देगा। और इस विवाह रात्रि में नव वधू को अधिक उपदेश प्रदान करने को तत्पर होने से, धौंपदेशभ का भान होता है। इस कारण अलमतिविस्तरेण।

अब एक बार,

कमल-शशी के कोहबर में,
गाती रह री कोयल पञ्चम स्वर में।

अब शशि, एक बार इस मर्त्यलोक में अवतीर्ण होकर तरङ्गों के ऊपर अप्सरा-रीति से नृत्य करो तो मैं देखूं। एक बार काले बादलों के भीतर वेग से दौड़ जाओ और एक बार अनन्त गगन के अनन्त पथ में उलट पड़ो तो मैं देखूं। एक बार गहरे बादल में छोटा सा छेद बना कर,

उसी रन्ध्रपथ में एक आँख डालकर मेरी तरफ मधुर दृष्टिपात करो तो मैं देखूं। एक बार नक्षत्र के साथ नक्षत्र का कलह छेड़ दो, और वे ज्योंही परस्पर संग्राम करने के लिए आ जायंगे, त्योंही उनके उभय दलों का व्यूह विदीर्ण कर तेज गति से दौड़ने लगी तो देखूं। एक बार द्रुतसञ्चालन से श्रान्ति अनुभव करके मुक्ता विनिन्दित स्वेद बिन्दु सिक्त ललाट पर घूंघट खींच कर गगन-गवाक्ष के पास स्थिर दृष्टि से बैठ कर वायुसेवन करो तो मैं देखूं। एक बार निरन्तर सुधावर्षण करके चकोर समूह की अपरितृप्त रसना को तृप्ति प्रदान करो तो देखूं। एक बार शुभ क्षण में कमलाकान्त के हृदय में आविर्भूत हो जाओ, कमलाकान्त शयन कर रहा है।

शशि! तुम क्षीरसागर कन्या, त्रिभुवन विहारिणी होकर भी, बालिका स्वभाव सुलभ अभिमान करती रहीं? कमलाकान्त किस दोष से दोषी है यह मैं बता नहीं सकता—अब, एक बार स्त्री-पुरुष भेद से उत्पन्न जटिलता-जाल काटने को उदाहरण के रूप में प्रसन्न का नाम मैंने ले लिया था इसीलिए, इतना अभिमान आज की इस रजनी में अच्छा नहीं लगता। देखो, तुम हो कलंकिनी, तो भी मैंने तुमको ग्रहण कर लिया। तुम्हारे साथ विवाह कर लेने के कारण, आज तक मेरा Lunatic× नाम पड़ा हुआ है। ज्योतिषी लोग कहा करते हैं कि तुम पाषाणी हो—तो भी मैंने तुम्हारे साथ विवाह कर लिया। उन लोगों ने कहा, तुम में मनुष्यता नहीं है, तो भी मैंने तुम्हारे साथ विवाह कर लिया। तो भी क्रोध करती हो? तो यह संसार-गरल-खण्डन, यह गिरितरु सिरसि मण्डन, यह करलेखा मेरे मस्तक पर उठा रक्खो। यदि तुम से हो सके तो उस अनन्त नील वृन्दावन के बादलों का घूंघट एक बार खींच कर एक बार मानिनी राधा बन बैठो। मैं एक बार स्त्री के पैर+ पकड़ कर यह जड़जीवन सार्थक कर लूं। आज

×चन्द्रग्रस्त, अर्थात् पागल।

+मैं जानता हूं; एक दिन कमलाकान्त ने प्रसन्न ग्वालिनी के पैर पकड़ लिये थे। किन्तु वह काम था दूध के लिए। भीष्मदेव

मेरे सौ दोषों से दोषी होने पर भी तुम्हारे द्वारा ही मेरे सभी पापों का प्रायश्चित्त होगा। तुम मेरे चान्द्रायण के चन्द्र-फलक हो। मेरे वैतरिणी पार होने की नवीन बछिया हो।

ऐसा करने से मैं सैकड़ों-हजारों विवाह करूंगा। अब कमलाकान्त ने नूतन विवाह की रीति पद्धति सीख ली है। कमल ने अब स्वयं वर, दानकर्ता, पुरोहित, बरेखिया बनना सीख लिया है। कमल अब जहाँ तहाँ विवाह कर सकता है। जब देखूंगा नवपल्लविता लता शाखा-स्कन्ध से मुंह बढ़ाकर कर पत्र सञ्चालन द्वारा बुला रही है, तभी मैं उसके साथ विवाह कर लूंगा। जब मैं देखूंगा, वह पद्ममुखी स्वच्छ सरसी दर्पण में अपना मुख बङ्किमग्रीवा से निरीक्षण करके हंस रही है, तभी मैं स्थल कमल के साथ जल कमल को मिला दूंगा। जब मैं देखूंगा कि, नदी इंद्रधनुष पकड़ लायी है और उसको लोक लोक कर खेल रही है, तभी उसको उस इंद्रधनुप से स्पर्श कराकर, अपनी सङ्गिनी बना लूंगा। जब मैं देखूंगा अनन्तशय्या पर स्वर्णादि-मणिभूषा और श्वेत वस्त्र से भूषित होकर उत्तर-दक्षिण दिशा को लेटी हुई नींद में पड़ी हुई है तभी उसका हाथ पकड़ कर धीरे धीरे जगा दूंगा और अर्धांग भागिनी बना लूंगा। जब मैं देखूंगा कि कुञ्जलता कानों में झूमक हिलाती हुई श्याम केश-राशि चारों तरफ बिखेर कर निस्तब्ध भाव से मृदु सूर्य किरणों से कुछ उत्तप्त होती जा रही है, तभी उसके केश गुच्छों में अपना मस्तक डालकर मैं उसके झूमकों को हटा दूंगा और उसके वर को पहचनवा दूंगा। कमलाकान्त चक्रवर्ती ने अब विवाह करना सीख लिया है, विवाह ठीक करने का गुण सीख लिया है, वह और किसी की उपासना न करेगा। यदि तुम लोग मेरे परामर्श पर श्रद्धा रखते हो तो मेरी तरह विवाह करो—मैं विवाह ठीक करना अच्छी तरह जानता हूँ, तुम लोगों के मन लायक सामग्री जुटा दूंगा।

सप्तम संख्या

बसन्त की कोयल

तुम हो बसन्त की कोयल, भली हो। जब फूल खिलते हैं, दक्षिण की हवा बहती है, यह संसार-सुख के स्पर्श से सिहर उठता है, तब तुम आकर रसिकता शुरू करती हो। और जब घोर कष्टकर जाड़े से जीवलोक में थरथराने वाली कपकपी लगती है, तब तुम कहाँ रहती हो जी? जब सावन की धारा से मेरे फूस के छप्पर में नदी बहने लगती है, जब वर्षा की बौछार से कौआ, चील भीग कर गोबर हो जाते हैं, तब तुम्हारा, घिसा मजा काला काला प्यार करने लायक शरीर कहाँ रहता है? तुम हो वसन्त की कोयल, शीत और वर्षा की कोई नहीं हो।

क्रोध मत करो—तुम्हारी तरह हम लोगों के बीच बहुत से लोग हैं। जब नसी बाबू के इलाके का लगान आता है, तब मानव-कोकिलों से उनका गृहकुंज भर जाता है।

कितने ही शिखा वालों, तिलक-विभूति वालों, जुल्फ के बाल संवारने वालों और चश्मा पहिनने वालों का जमावड़ा बाजार सरीखा लग जाता है—कितनी ही कविताओं, कितने श्लोकों, गीतों, बाजारू अंग्रेजी, देहाती अंग्रेजी, टूटी-फूटी अंग्रेजी से नसी बाबू का बैठकखाना कबूतरों की गुटरगूँ से परिपूर्ण किसी बड़े घर की तरह विकृत हो उठता है, जब उनके मकान में नाच, गान, नाटक, पर्व उपस्थित होते हैं, तब दल के दल मनुष्य-कोकिल आकर उनके घर द्वार को अंधेरा बना देती हैं। कोई खाता है, कोई हंसता है, कोई खाँसता है, कोई तमाखू फूंकता है, कोई हंसता हुआ घूमता रहता है, कोई अधिक मात्रा में नशा सेवन कर लेता है, कोई टेबिल के नीचे लोट-पोट हो जाता है। जब नसी बाबू बगीचे में जाते हैं, तब मनुष्य कोकिल उनके साथ चींटियों की कतार बना देती हैं। और जिस रात को बराबर बिना रुके वर्षा हो रही थी, और नसी बाबू के लड़के की अकाल मृत्यु हो गयी, तब उनको एक भी मनुष्य नहीं मिला। कोई तो बीमार रहने के कारण न आ

सका; किसी को बहुत सुख था, पौत्र का जन्म हुआ था, इसलिए खुशी के मारे न आ सका। किसी को सारी रात नींद नहीं आयी, इस कारण वह न आ सका। कोई सारी रात घोर निद्रा से अभिभूत रहा, इस कारण न आ सका। असल बात यह है कि, उस दिन वर्षा रही, वसन्त नहीं था। वसन्त की कोयल उस दिन क्यों आवेगी?

तो हे प्रिय वसन्त की कोयल, तुम्हारा दोष नहीं है, तुम अपनी बोली बोलो। उस अशोक वृक्ष की डाली पर बैठकर, लाल रंग के फूलों के ढेर में अपने शरीर को जलाती हुई आग के बीच पड़े हुए काले बैंगन की तरह छिपाये हुए, एक बार अपने उस पञ्चम स्वर से, कू—ऊ कहकर पुकारो। तुम्हारी उस कू—ऊ बोली को मैं बहुत प्यार करता हूं। तुम स्वयं काली हो—दूसरों के अन्न से पाली गयी हो, तुम्हारी दृष्टि में सभी "कु" है। किन्तु तुमसे जितना हो सके, उस पञ्चम स्वर से पुकारो, कहो, "कू—ऊ।" जब तुमको पृथ्वी में ऐसी कुछ सुन्दर सामग्री दिखाई पड़े, जिसके प्रति तुम्हारे मन में द्वेष, हिंसा, ईर्ष्या का उदय होता हो, तभी ऊंची डाली पर बैठकर पुकारना—"कू—ऊ।"—क्योंकि तुम हो सौन्दर्य शून्य, पराम—प्रतिपालित, जभी तुमको दिखाई पड़े कि लता सन्ध्या की हवा पाकर एक के ऊपर एक रखे हुए पुष्प स्तवकों को लिये हुए, हिल उठने लगी है और साथ ही सुगन्ध की तरंगें नाचने लगी है—तभी तुम जोरदार शब्दों में चिल्ला उठना "कू—ऊ।" जब ही तुमको दिखाई पड़े कि, गन्धराज एक ही समय में खिलकर, अपनी ही गन्ध से आप ही विभोर होकर, परस्पर एक दूसरे के ऊपर लुढ़क रहे हैं, तभी अपनी उस डाल से पुकार मचाना—"कु—ऊ' जब ही तुमको दिखाई पड़े कि, बकुल पुष्प के पौधे की अति घन-विन्यस्त मधुर श्यामल स्निग्धोज्ज्वल पत्रराशि में शोभा का अन्त नहीं है—पूर्ण यौवना सुन्दरी के लावण्य की तरह हंस हंस कर, उमड़ उमड़ कर टूट कर, पिघलकर, उछल रहा है, उसके असंख्य खिले हुए कुसुमों की गन्ध से आकाश परिपूर्ण हो रहा है, तब उसके ही आश्रय में बैठकर, उन्हीं पत्रों के स्पर्श से अंगों

को शीतल करके, उस गन्ध से शरीर को पवित्र बनाकर, उस बकुल-कुञ्ज से तुम पुकार उठना—"कू—ऊ।" जब तुमको दिखाई पड़े कि, शुभ्रमुखी शुद्धशरीरा सुन्दरी नवमल्लिका सन्ध्या-शिशिर से सिक्त होकर, आलोककी प्रखरता में कमी देख कर धीरे धीरे अपने मुख को खोल देने का साहस कर रही है— स्तर-स्तर पर असख्य कलंकहीन पंखड़ियों को विकसित करने की तैयारी कर रही है—जब तुमको दिखाई पड़े कि, भ्रमर उस रूप को देख कर "प्यार करने को आगे बढ़ रहा है" और परिपूर्ण कंठ से गुन्-गुन् मधु ढाल रहा है—तब हे कालेमुखवाली! फिर "कू—ऊ" पुकार कर मन की ज्वाला मिटा देना। और जब ही गृहस्थ के गृह के आँगन के अनार वृक्ष की डाली पर बैठे रहने की हालत में तुमको दिखाई पड़े कि, उन गृहस्थ पुष्परूपिणी कन्याओं में उस लता का हिलना-डुलना, उस गन्धराज का खिलना, उस बकुल का रूपोच्छ्वास, उस मल्लिका की अमलता सभी गुण एक ही जगह मिलित हो गये हैं, तभी उनके मुखों के ऊपर उस पञ्चम स्वर से घर की दीवारों को प्रतिध्वनित करके सभी को पुकार कर कह देना, इतना रूप, इतना सुख, इतनी पवित्रता, प "कू ऊ!" वही है तुम्हारी जीत—वही पञ्चम स्वर। नहीं तो, तुम्हारा वह कू—ऊ कोई नहीं सुनता। इस संसार में ग्लैडस्टन डिजरेली आदि की भांति—तुम केवल अपनी जबर्दस्त वाणी के जोर से जीत गयीं—नहीं तो इतना कालापन काम न देता। तुम से तो वह डोमचाचा (द्रोणकाक) अच्छा है। बोली में इतना जोर न रहता तो जिन्होंने निरर्थक निस्सार उपन्यास लिखे हैं, वे राजमंत्री क्यों हो जाते? और जान स्टुअर्ट मिल को पार्लामेन्ट में स्थान क्यों नहीं मिला।

तो हे कोयल, तुम प्रकृति की पार्लामेन्ट में बैठकर नक्षत्रमय, नील चन्द्रातपमन्डित, गिरि नदी नगर कुञ्जादि बेंचों से सुसज्जित, इस महासभागृह में अपने इस मधुर पञ्चम स्वर से—"कू—ऊ कहकर पुकारो—सिंहासन से हेस्टिंग्स तक सभी काँप उठें। "कू—ऊ!" "कू—ऊ!" अच्छा, यही ठीक है। उस कलकंठ से 'कु' कहने से

'कु' मानूंगा, 'सु' कहने से 'सु' मानूंगा। 'कु' ही तो है! सभी 'कु' है। लताओं में कण्टक हैं; कुसुमों में कीट हैं; गन्ध में विष है, पत्ते सूख जाते हैं, रूप विकृत हो जाते हैं, स्त्रियां वञ्चना जानती हैं। 'कु—ऊ' ठीक है—तुम गाओ। किन्तु तुम उस पञ्चम स्वर से पुकारोगी तो उसी क्षण मैं 'कु' मान लूंगा, नहीं तो मुर्ग दादाजी कुक् कुक् कह कर मेरी सुखपूर्ण प्रभाती निद्रा को 'कु' कहेंगे तो मैं न मानूंगा। उस में गला नहीं है। गले के जोर से संसार शासित होता है अवश्य, किन्तु केवल चिल्लाने से ही काम नहीं होता। यदि शब्दमन्त्र से संसार को जीत लिया जाता तो तुम्हारे स्वर में पञ्चम लग जाना ही ठीक है। बेपरदा या कड़ी मध्यम का यह काम नहीं है। सर जेम्स मैकिन्टश अपनी वक्तृता में फिलासफी[1] की कड़ी मध्यम मिला देने से हार गये—और मेकाले रेटरिक[2] का पञ्चम लगा देने से जीत गये। भारतचन्द्र आदिरस पञ्चम में रख देने से जीत गये हैं—कवि कङ्कण का ऋषभ स्वर कौन सुनने वाला है? देखो, लोगों के वृद्ध माता-पिताओं के अनाप शनाप बकने झकने से कौन फल होता है? और जब बाबू की गृहिणी बाबू का सुर ठीक कर देने के लिए बाबू के कान मलती हुई पञ्चम सुर से गले की आवाज सुनाती हैं तब बाबू पिंडिं पिंडिं बोलते हैं या नहीं!

तो तुम्हारे स्वर को पञ्चम स्वर क्यों कहा जाता है, यह मैं नहीं समझता, जो मीठा है, वही पञ्चम है? दो पञ्चम अवश्य मीठे हैं, सुरका पञ्चम, और आलता लगाये हुए छोटे पैर का गुजरी पञ्चम। किन्तु सुर पञ्चम पर उठ जाने से मीठा होता है, छोटे पैर का पञ्चम (स्वर) पैर से नीचे उतार देने से ही मीठा होता है।

कौन स्वर पञ्चम है, कौन सप्तम है, कौन मध्यम है, कौन गान्धार है, यह मुझे कौन समझा देगा? यह है हाथी की चिंघार, वह है घोड़े की हिनहिनाहट, वह है मोर की केकाध्वनि, वह है बन्दर की किच् मिच

---

[1] दर्शन

[2] अलंकार

बोली, यह कहने से तो मैं कुछ समझ नहीं सकता। मैं हूं अफीमची, बेसुरा सुनता हूं, बेसुरा समझता हूं, बेसुरा लिखता हूं—धैवत, गान्धार, निषाद, पञ्चम से मेरा क्या सम्बन्ध? यदि कोई पखावज, तानपूरा, सारंगी लेकर मुझे सप्त सुर समझाने आ जाय, तो उसको गर्जना सुनकर मङ्गला गाय के सद्यःप्रसूत बछड़े की ध्वनि मुझे याद आ जाती है। उसके पी चुकने के बाद जो निर्जल दूध बचा रहता है उसके ही ध्यान में मन व्यस्त हो जाता है—सुर समझ में नहीं आता। मैं गायक के प्रति कृतज्ञ होकर उसको तन-मन-शरीर से आशीर्वाद देता हूँ कि जन्मान्तर में मङ्गला के बछड़े के रूप में उसका जन्म होवे।

अब आजा, चिड़िया! तू और मैं मिलकर एक बार पञ्चम में गावें। तू भी जो है, मैं भी वही हूं—समान दुःख के दुखी हैं, समान सुख के सुखी हैं। तू इस पुष्पकानन में वृक्ष वृक्ष-पर अपने आनन्द से गाती हुई विचरण कर—मैं भी इस संसार-कानन में, अपने आनन्द से यह पोथा लिखता हुआ घूमता रहूं—आ मित्र, तू और मैं एक साथ मिल जुल कर पञ्चम में गावें। तेरा भी कोई नहीं है—आनन्द है, मेरा भी कोई नहीं है—आनन्द है। तेरी पूंजी वह गला है, मेरी पूंजी वह अफीम का गोला है। तू इस संसार में पञ्चम स्वर पसन्द करती है—मैं भी करता हूं। तू पञ्चम स्वर से किसे पुकारती है? मैं भी किसे? बता तो चिड़िया, किसे?

जो सुन्दर है उसी को पुकारता हूं; जो अच्छा है उसे ही पुकारता हूं। जो मेरी पुकार सुनता है उसी को पुकारता हूँ। यही जो आश्चर्यजनक ब्रह्माण्ड है, जिसको देख कर मैं कुछ भी समझ नहीं सकता, विस्मित हो पड़ा हूं, इसी को पुकारता हूँ। इस अनन्त, सुन्दर जगत्-शरीर में जो आत्मा है, उसको पुकारता हूँ। मैं भी पुकारता हूं, तू भी पुकारती है। जानकारी में पुकारता हूँ, बिना जाने पुकारता हूँ, एक ही बात है। तू भी कुछ नहीं जानती, मैं भी नहीं जानता। तेरी भी पुकार पहुँचेगी, मेरी भी पुकार पहुँचेगी। यदि सर्व शब्दग्राही कोई कान होगा, तो तेरी पुकार क्यों न पहुंचेगी? आ मित्र, एक बार मिल जुल कर हम दोनों पञ्चम

स्वर में पुकारें।

तो कुहूरव से भजे हुए गले से कोयल, तू एक बार पुकार तो, देखूं री। कंठ नहीं है इसलिए अपने मन की बात मैं कभी बता नहीं सका। यदि मैं तेरा यह भुवनमोहन स्वर पा जाता तो बता देता। तू मेरे उस मन की बात प्रकट करके इस पुष्पमय कुञ्जवन में एक बार पुकार तो, देखू री। जिस बात को कहने कहने की इच्छा होती रहती है, पर कहना नहीं जानता, उसी बात को तू कह दे तो देख लूं री। कमलाकान्त ने अपने मन की बात इस जन्म में कहीं नहीं कह पाई—यदि मैं कोयल का गला पा जाऊँ—अमानुषी भाषा पा जाऊँ, और नक्षत्रादि को श्रोता पाऊँ, तो मन की बात कहूँ। उस नीलाम्बर में प्रवेश कर, उस नक्षत्रमण्डली में उड़कर, कभी क्या मैं 'कुहू' कहकर पुकार न सकूंगा? भले ही मैं न पुकार सकूं, तू कोयल, मेरी तरफ से एक बार पुकार तो, देखूं री।

श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती।

अष्टम संख्या

स्त्रियों का रूप

अनेक स्त्रियां अपने सौन्दर्य के गर्व से जमीन पर पैर नहीं रखतीं। वे सोचती हैं कि, जिस दिशा से अपने अंगों को हिलाती हुई वे निकल जाती हैं लावण्य की तरंगों से उस दिशा की संज्ञा डूब जाती है। नवीन जगत् की सृष्टि हो जाती है। वे समझती हैं कि उनके सौन्दर्य की आंधी जिस तरफ चलने लगती है, उस तरफ सबके धैर्य की मड़ैया उड़ जाती है, धर्म का गढ़ ढह जाता है। जब पुरुषों के मन-तट पर उनके सौन्दर्य की बाढ़ आ जाती है तब उनका कर्म-जहाज धर्म नौका, बुद्धि की डोंगी सभी बह जाती हैं। केवल सौन्दर्याभिमानियों की ही ऐसी धारणा नहीं है। पुरुष भी जब मोहिनी शक्ति के वशीभूत होकर उनके सौन्दर्य की

महिमा का वर्णन करना आरम्भ करते हैं, तब वे भी क्या कहते हैं, यह सोचने से आश्चर्य में पड़ जाना होता है। तब वे आकाश के ज्योतिष को पृथ्वी के पर्वतों, पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों, लता-गुल्मादि सभी को लेकर उपमा के लिए खींचतान उपस्थित कर देते हैं—इसके अतिरिक्त बहुतों को अपमानित ही करके भेजते हैं। रूपवती के मुखमण्डल के साथ तुलना करके वे पूर्ण चन्द्रमा को न्योता देकर, फिर उसे कालिमावत् म्लान कहकर लौटा देते हैं। वह गरीब चन्द्रमा अपना कलंक आपही हृदय में रखकर रातोरात आकाश का काम पूरा करके भाग जाता है। सुन्दरी के ललाट का सिन्दूर बिन्दु देखकर वे लोग ऊषा की सीमन्त शोभा तरुण सूर्य की निन्दा करते हैं। क्रोध से सूर्यदेव पृथ्वी को जलाकर चले जाते हैं। रसमयी के मुख की हास्यराशि अवलोकनकर खिले कमल में सूर्य किरणों का हास्य या विकसित कुमुदों में कौमुदी का नृत्य वे लोग अब पसन्द नहीं करते। उसी समय से कमल-कुमुदों पर कीट-पतंगों का अधिकार हुआ है। स्त्रियों का कण्ठहार निरीक्षण करके वे लोग निशा की तारकामाला के प्रति अवज्ञा प्रकाश करते हैं। जान पड़ता है कि, भविष्य में ज्योतिष का अनुशीलन त्यागकर वे लोग स्वर्णकार की विद्या में मन लगावेंगे। रंगीली के शरीर सञ्चालन में वे लोग इतनी लावण्यलीला विलोकन करते हैं कि ज्योत्स्ना-मयी रजनी में मन्द मन्द आन्दोलित वृक्षपत्रों या नियत कम्पित सिन्धु हिल्लोल में चन्द्रिका के नृत्य देखने में उनका मन अब नहीं रमता। इसी लिए शायद रात्रि को वे नींद में सो जाते हैं और नदी को घड़ों से सोखते रहते हैं। फिर जब वे स्त्रियों के नयनों का वर्णन करते हैं तब सरो-वर के मलयसमीर से हिलने वाले नीलकमल तो दूर रहे विश्वमंडल का कुछ भी उन लोगों को अच्छा नहीं लगता।

इस नारीमूर्ति की स्तुति करने वालों में उपमानुभव शक्ति की कुछ प्रशंसा करनी पड़ती है। एक नेत्रको लीजिए। वह उनकी कल्पना के प्रभाव से कभी पक्षी जैसे खंजन, चकोर, कभी मछली जैसे सफरी, उद्भिद्, यथा पद्म, पलाश, इन्दीवर, कभी जड़ पदार्थ यथा आकाश का तारा बन जाता है। यह चन्द्रमा कभी स्त्रियों का मुखमंडल हो जाता है, कभी उनके पैरों

का नख।(*) उच्च कैलाश शिखर और क्षुद्र कमल कोरक एक ही अंग के उपमास्थल हैं, किन्तु इससे भी पूरा नहीं पड़ता, इसलिए दाड़िम कदम्ब, करिकुम्भ आदि की विषम उपमा शृंखला बद्ध हुई है। जलचर छोटा सा पक्षी बतख, और स्थलचर प्रकाण्ड चतुष्पद हाथी, इनके चलने में विषमता रहना ही स्वाभाविक है। किन्तु कवियों को दृष्टि में दोनों ही स्त्री-कुल-चरण विन्यास का अनुकरण करते हैं। फिर हर एक हाथी के गमन के साथ इन हंसगामिनियों का गमन सादृश्य निर्देश करना उचित नहीं है। जो हाथी, हाथियों का राजा है, उस हाथी के साथ ही गजेन्द्रगामिनियों की गति तुलनीय है। मैं सुन चुका हूँ, हाथी एक दिन में बहुत दूर जा सकता है, अश्व आदि कोई पशु उतनी दूर नहीं जा सकता। जिन लोगों को दूर जाना पड़ता है, वे इन गजेन्द्रगामिनियों की पीठ पर चढ़कर क्यों नहीं जाते। जिस तरफ रेलवे नहीं है, उस तरफ चुनचुन कर गजगामिनी स्त्रियों की डाक बिठा देने से कैसा होगा?

मैं भी एक समय कामिनीभक्त कविदल के अन्तर्गत था। मैं उस समय इस अखिल संसार में स्त्री की भाँति और कोई सुन्दर वस्तु देख नहीं पाता था। चम्पा, कमल, कुन्द, गुड़हल, मौलसिरी, कदम्ब, गुलाब आदि पुष्पसमूह कामिनीकान्ति ग्रथित कुसुम-मालिका की तरह मनोहर नहीं मालूम होते थे। क्या बताऊँ, बसन्त की कुसुमवती वसुमती की अपेक्षा भी मैं कुसुममयी महिला को प्यार करता था। वर्षों की उच्छ्वसित सलिला चिररंगिणी तरंगिणी की अपेक्षा भी मैं रसवती युवती का पक्षपाती था। किन्तु अब मेरा वह भाव नहीं है। मुझे दिव्यज्ञान हो गया है। मैं मानमयी-मानवी मण्डली का कुहक जाल काटकर निकलकर भाग चला हूँ। मछुए के सड़े जाल में पड़कर बहुत बड़ा राघव मच्छ जैसे जाल को

(*) मेरे विचार से चन्द्र के साथ नख की तुलना अति सुन्दर है—क्योंकि, उत्तम पद-विन्यास हो सकता है—यथा, नखर-निकर-हिमकर-करम्बित कोकिल-कूजित कुञ्ज-कुटीरे।—यह मेरी अपनी रचना है।

फाड़कर भाग जाता है, उसी प्रकार मैं भाग निकला हूँ। जिस तरह गुब-रैला कीड़ा छोटी मकड़ी के जाल में पड़ जाने पर उस जाल को फाड़कर भाग जाता है, मैं उसी प्रकार भाग निकला हूँ। बनैली गाय एक बार पगहा तोड़ लेने पर जिस तरह लम्बी साँस से भाग जाती है, उसी प्रकार दौड़ लगाकर मैं भाग निकला हूँ। यह सभी अफीम के प्रसाद से। हे माता अफीम देवी ! तुम्हारी डिबिया अक्षय हो। तुम प्रतिवर्ष सोने के जहाज पर चढ़कर चीन देश में पूजा पाने के लिए चली जाती हो, जापान साइ-बेरिया, यूरोप, अमेरिका सभी तुम्हारे अधिकार में आ जायं। तुम्हारे नाम से देश देश में दुर्गोत्सव होने लगें। कमलाकान्त को अपने चरणों में रखना। मैं तुम्हारी कृपा से साधारण जनों के उपकारार्थ अपना मन खोलकर दो चार बातें कहूँगा।

ये बातें सुनकर केवल स्त्रियां ही क्यों, अनेक पुरुष भी मुझे पागल कहेंगे। कहते रहें, कोई हानि नहीं। जो ही नई बात लिखता है, उसी की गणना पागलों में होने लगती है, गैलिलीओ ने भी कहा था कि यह पृथ्वी घूम रही है। इटली का भद्र समाज, धार्मिक समाज, विद्वत् समाज, सुनकर हंसने लगा था। सुनकर उन लोगों ने निश्चय किया कि, गैली-लियो को भी मतिभ्रम हो गया है। काल का स्रोत बह गया। इटली का भद्र समाज, विद्वत् समाज, अब पृथ्वी घूम रही है सुनकर नहीं हंसता। गैलीलिओ को भी वे लोग अब पागल नहीं समझते।

सभी लोग सौन्दर्य के विषय में स्त्रियों की प्रधानता स्वीकार करते हैं। विद्या, बुद्धि, बल में पुरुषों की श्रेष्ठता स्वीकार करके भी सौन्दर्य का टीका स्त्रियों के मस्तक पर लगाते हैं। मेरी विवेचना से यह भारी भूल है। मैंने दिव्य नेत्रों से देख लिया है कि, पुरुषों के रूप की अपेक्षा स्त्रियों का रूप बहुत निकृष्ट है। हे मानमयी मोहिनी गण। कुटिल कटाक्ष से काल-कूट वर्षण करके मुझे तुम इस अपराध के लिए दग्ध मत करना, काल-सर्पविनिन्दित वेणी से मुझे बाँध मत देना। भ्रू धनु में कोप से तीक्ष्ण-शर संयोजित करके मुझे बेध मत देना। क्या कहूँ, तुम लोगों की निन्दा करने में डर लगता है। पथ का अनुमान कर यदि तुम लोग नथ का

फंदा बिछा दो, तो कितने ही हाथी अपने पैरों के बंध जाने से तुम लोगों की नाक से झूल सकते हैं—कमलाकान्त की कौन हस्ती है। तुम लोगों की नथ का लटकन खिसक कर गिर जाय तो मनुष्यों के खून हो जाने की बड़ी सम्भावना हो जायगी। चन्द्रहार का एक चाँद यदि स्थान-च्युत होकर किसी के शरीर पर लग जाय तो उसके हाथ पैरों का टूट जाना कुछ भी विचित्र न होगा। इस कारण तुम लोग क्रोध मत करना। और हे ललनाप्रिय, कल्पनाप्रिय, उपमाप्रिय कविगण, तुम लोगों की स्त्री-देवी को सुखमयी स्वर्णमयी प्रतिमा को तोड़ देने को मैं तत्पर हो गया हूँ, इस लिए तुम लोग मुझे मारने पीटने को उद्यत मत हो जाना। मैं यह सिद्ध कर दूँगा कि, तुम लोग कुसंस्कारयुक्त मूर्तिपूजक हो। तुम लोग उपास्य देवता की यथार्थ मूर्ति छोड़ विकृत प्रतिमूर्ति की पूजा कर रहे हो।

जिसके सुन्दर केशराशि है, वह तो नकली बाल व्यवहार में नहीं लाता। जिसके उज्ज्वल अच्छे दांत हैं उसको कृत्रिम दांतों की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिसका वर्ण लोगों का मन हरण कर लेता है, उसको फिर रंग पोत कर अपना लावण्य बढ़ाना नहीं पड़ता। जिसके नेत्र हैं उसे काँच की बनी आंखों का आश्रय नहीं लेना पड़ता। जिसके चरण हैं उसे फिर काठ के पैरों का अवलम्बन नहीं करना पड़ता। इस प्रकार जिसके पास जो वस्तु है वह उसके लिए लालायित नहीं होता। जो समझ लेता है कि, प्रकृति ने उसे किसी पदार्थ से वञ्चित कर दिया है, वही उस विषय में अपना अभाव दूर करने के लिए यत्न करता है. यह सब देख सुनकर मैंने निश्चय कर लिया है कि, स्त्रियों में सौन्दर्य का अत्यन्त अभाव है। वे सर्वदा अपना रूप बढ़ाने में व्यस्त हैं; किस उपाय से वे अपने को सुन्दरी दिखावें, इसी को लेकर वे पागल सी बनी रहती हैं। अच्छे अच्छे आभूषण कैसे मिलेंगे, इसी चिन्ता में वे बराबर रहती हैं। यही उनकी चेष्टा रहती है। यहाँ तक कि यह भी कहा जा सकता है कि, अलङ्कार ही उनका जप है, अलङ्कार ही उनका तप है, अलङ्कार ही उनका ध्यान है अलङ्कार ही उनका ज्ञान है। अपना

शरीर सजाने में उनका इतना यत्न है। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उनमें प्रकृति सौन्दर्य अधिक है। जिसकी नाक सुन्दर नहीं है वही नाक में नथरूप रज्जु में लटकन रूप जगन्नाथ को झुलाती है। जिसके कान सुन्दर नहीं हैं, वे ही ढाके के बने कान (एक कान का गहना), जिनमें फल फूल पशु पक्षी बने होते हैं और जिन्हें एक बाग ही कहना चाहिए, दोनों कानों में लटका देती है। जिसका हृदय अच्छा नहीं है, वही यहां सात लड़ों की फाँसी की रस्सी टांग कर पुरुष जाति को, विशेषतः दूध पीने वाले बच्चों को भय दिखाती है। जो अलंकार के बिना ही अपने को सुन्दरी जानती हैं, वह कभी अलङ्कार का बोझ ढोने के लिए बहुत व्यग्र नहीं होती। पुरुष भूषण के बिना सन्तुष्ट रहता है, स्त्रियां भूषण के बिना मनुष्य-समाज में मुख दिखाने में लज्जित होती हैं। इस कारण स्त्रियों के ही व्यवहार से समझ में आ रहा है कि, पुरुष की अपेक्षा स्त्रियाँ सौन्दर्य-विषय में निकृष्ट हैं।

स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष का सौन्दर्य अधिक है, इस में प्रकृति की सृष्टि पद्धति की समालोचना करके देखने से और भी प्रतीति उत्पन्न होगी। जो विस्तृत चन्द्र कलाप मोर के हैं, वह मयूरी के नहीं हैं। जिस केसर (अयाल) से सिंह की इतनी शोभा है, वह सिंहिनी के नहीं है। जिस कूड़ से साँड़ की कान्ति बढ़ती है, वह गाय को प्राप्त नहीं है कूं मुर्गे को जैसी सुन्दर ताम्रचूड़ा (लाल कलंगी) और पंख प्राप्त हैं, मुर्गी को नहीं मिले। इस प्रकार तुमको देखने को मिलेगा कि, उच्च श्रेणी के जीवों में स्त्री की अपेक्षा पुरुष सुन्दर है। मनुष्य की सृष्टि करने में प्रवृत्त होकर सृष्टि कर्ता ने इस नियम का व्यतिक्रम कर दिया हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। हे मूल "विद्यासुन्दर" के कवि! तुम्हारे मन में क्या यह तत्व उदित हुआ था? क्या इसी कारण तुमने नायक का नाम सुन्दर रख दिया था? तुमने क्या यह समझ लिया था कि, स्त्रियां कितनी ही विद्यावती क्यों न हों, पुरुषों के स्वाभाविक सौन्दर्य और बुद्धि के सामने उनको पराभव स्वीकार करना ही पड़ेगा?

सौन्दर्य की बहार यौवनकाल में रहती है। किन्तु रूपान्ध भामिनी

गए ! तुम्हारा यौवन कब तक रहता है ? ज्वार के जल की तरह आते आते ही वह चला जाता है। बीस वर्ष की अवस्था में तुम लोग बूढ़ी हो जाती हो। थोड़े ही दिनों में तुम्हारे सभी अंग शिथिल हो जाते हैं। वयःक्रम आकर शीघ्र ही तुम्हारे गले की लावण्य माला को तोड़ डालता है। चालीस-पैंतालीस वर्ष में पुरुषों की जो सुन्दरता रहती है, बीस-पचीस के ऊपर पहुँचने पर तुम लोगों की वह नहीं रहती। तुम लोगों के रूप की स्थिति बिजली की तरह है। इन्द्रधनुष की भाँति घड़ी भर के लिए भले ही न रहे, पर वह अति अल्पकाल के लिए रहती है, इसमें सन्देह नहीं। जो लोग सौन्दर्य-उपभोग में उन्मत्त हैं, उनकी यन्त्रणा कैसी है इसका अनुभव मैं भोजन करने के लिए बैठने पर ही कर सकता हूं,—मेरे जीवन में घोर दुःख यह है कि अन्न व्यञ्जन थाली में रखते रखते ही ठंडे हो जाते हैं। उसी प्रकार सौन्दर्य रूप मोटे चावल का भात है, प्रेम-केलों की पत्तल पर डालते-डालते ही ठंडा हो जाता है—फिर किसमें सामर्थ्य है कि उसे खा सके। अन्त में वेश-भूषा रूप इमली की चटनी मिला कर, जरा अदरख-नमक के कतरे डालकर किसी तरह निगल जाना पड़ता है।

हे सौन्दर्यगर्वित ललना-कुल ! सचाई की शपथ लेकर बता दो तो, यह रूप क्षण स्थायी है, इसीलिए क्या तुम लोगों के रूप का इतना आदर है ? अच्छी तरह देखते न देखते अच्छी तरह उपभोग करते न करते, वह गायब हो जाता है, इसी कारण क्या तुम्हारे रूप के लिए पुरुष लोग पिपासित चातक की भाँति उन्मत्त रहते हैं ? अपरिज्ञात खोया हुआ धन होने के ही कारण क्या तुम लोग इसका वास्तविक मूल्य निर्णय करने में असमर्थ हो ? केवल क्षणस्थायी पदार्थ होने के कारण नहीं, अन्य कारण से भी स्त्रियों का सौन्दर्य मनोहर मूर्ति धारण कर लेता है। जिन सब ग्रन्थकारों का मत भूमण्डल में ग्राह्य हो गया है, वे सभी पुरुष हैं, इस कारण मेरे विचार से उन्होंने अनुराग-नेत्रों से कामिनी कुल की रूप वर्णना की है। कहावत ही है कि "दिल लगा गधी से तो परी क्या चीज है !" जो स्त्रियां प्रेम की चीज़ हैं, उनको कौन सहज नेत्रों से

देखेगा ? सुन्दर दर्पण के प्रभाव से देखी हुई वस्तु कुत्सित होने पर भी सुन्दर दिखाई पड़ेगी, मनमोहिनी रूप निरीक्षण करते समय उसको प्रीति का आंजन लगाकर देखूंगा तो पुरुष की अपेक्षा उसका माधुर्य क्यों अधिक न जान पड़ेगा ?

हे प्रेमदेवता, पाश्चात्य कवियां ने तुमको अन्धा कहा है। यह उचित मिथ्या नहीं है। तुम्हारे प्रभाव से लोग प्रिय वस्तु का दोष नहीं देख पाते। तुम्हारे अञ्जन से जिसके नेत्र रञ्जित हो चुके हैं, वह विश्वविमोहन पदार्थ-परम्पराओं से घिरा रहता है। विकट मूर्ति को वह मनोहर देखता है, कर्कश स्वर को वह मधुमय समझता है; प्रेतिनी की अङ्ग-भङ्गी को वह मृदुमन्द मारुत से झूलने वाली ललितलवङ्गलता की लावण्य लीला की अपेक्षा भी सुखकरी समझता है। इसी कारण चीन देश में चिपटी नाक का आदर होता है। इसी कारण विलायती बीबियों के लाल केशों और बिल्ली सरीखी आँखों का आदर होता है। इसीलिए अफ्रीका देश में स्थूल ओठों का आदर है। इसी कारण बंग देश में गोदना-चित्रित, मिस्सी कलंकित चन्द्र-वदनों का आदर है। इसीलिए मानव समाज में स्त्री-रूप का आदर है। और यदि स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति अपने-मन की बातें मुंह से निकाल सकतीं तो हे प्रेमदेवता, अपने गुण से भले ही न हो, कम से कम तुम्हारे कारण ही हम लोग सुन लेते कि पुरुषों के सौन्दर्य के सामने स्त्रियों का रूप कुछ भी नहीं है। यद्यपि हृदय का भाव वचनों द्वारा व्यक्त करने में महिलायें अत्यन्त संकुचित रहती हैं, तथापि कार्यों के द्वारा उनके आन्तरिक सभी गूढ़ तत्त्व कुछ परिमाण में प्रकाशित हो जाते हैं। किस ने यह नहीं देखा है कि, सुन्दरियाँ परस्पर एक दूसरी का सौन्दर्य स्वीकार करना नहीं चाहतीं, फिर भी वे पुरुषों की भक्त हो जाती हैं ? इससे क्या यही समझ में नहीं आता कि, वे मन ही मन स्त्रियों की सुन्दरता की अपेक्षा पुरुषों की सुन्दरता की पक्षपातिनी हैं ?

रूप रूप रटते रहने से स्त्रियों का सर्वनाश हो गया है। सभी सोचते हैं कि रूप ही स्त्रियों का महामूल्यवान् धन है। रूप ही कामिनीकुल का

सर्वस्व है । इस कारण महिलाएं जो कुछ काम्य वस्तुओं की प्रार्थना करती हैं, उन्हें लोग केवल रूप के ही बदले में देना चाहते हैं । इसीं से मनुष्य समाज के लिए कलंक स्वरूप वाराङ्गनावर्ग की उत्पत्ति हुई है ।

अस्थायी सौन्दर्य ही स्त्री-मण्डली का एक मात्र सम्बल है, संसार-सागर पार होने का एक मात्र कर्णधार है—यह बात मैं अब सुनना नहीं चाहता । बहुत दिन मैं यह सुन चुका हूं, सुनकर कान सुन्न-बहरे हो गये हैं । अब मैं सुन नहीं सकता । सुनना चाहता हूँ कि नारी जाति में सुन्दरता की अपेक्षा सैकड़ों गुने, सहस्र गुने, लाख गुने, करोड़ गुने महत्त्व के गुण विद्यमान हैं । मैं सुनना चाहता हूँ कि, वे मूर्तिमती सहिष्णुता हैं भक्ति हैं और प्रीति हैं । जिन लोगों ने देखा है कि कितने यत्न से महिलाएं आत्मीयजनों की सेवा-सुश्रूषा करती हैं, वे महिलाकुल की सहिष्णुता का किञ्चित् परिचय पा गये हैं । जिन लोगों ने किसी समय किसी सुन्दरी को पति-पुत्रों के लिए जीवन-विसर्जन करते, धर्म के लिए बाह्य सुख विसर्जन करते देखा है, वे कुछ हद तक समझ गये हैं कि कैसी प्रीति और भक्ति स्त्री-हृदय में निवास करती है ।

जब मैं उत्कृष्ट स्त्रियों के विषय में सोचने लगता हूँ, तभी मेरे मानसपट में सहमरण में प्रवृत्त सतियों की मूर्तियां जाग उठती हैं । मैं देख पाता हूँ कि चिता जल रही है, पति के चरण सादर गोद में धारण कर प्रज्ज्वलित अग्नि के बीच पतिव्रता बैठी हुई है, धीरे धीरे आग बढ़ती जा रही है, एक अङ्ग को जला कर दूसरे अङ्ग में प्रवेश कर रही है । अग्निदग्धा पति चरणों का ध्यान कर रही हैं रह रह कर हरि नाम उच्चारण कर रही हैं या उच्चारण के लिए संकेत कर रही हैं । शारीरिक क्लेश का परिचायक कोई लक्षण नहीं है । आनन प्रफुल्ल है । धीरे धीरे पावक शिखा बढ़ चली, जीवन छूट गया, काया भस्मीभूत हो गयी । धन्य है सहिष्णुता ! धन्य है प्रीति ! धन्य है भक्ति !

जब मैं यह सोचने लगता हूं कि, कुछ दिन पहले, हमारे देश की अबला अङ्गनाएं कोमलाङ्गी होते हुए भी इस तरह मर सकती थीं, तब

मेरे मन में नूतन आशा का संचार हो जाता है। तब मुझे विश्वास हो जाता है कि महत्त्व के बीज हमारे अन्तर में भी छिपे हैं। आगे भी क्या हम महत्त्व न दिखा सकेंगे? हे बङ्गमहिलागण—तुम लोग इस बङ्ग देश का सार रत्न हो। झूठ मूठ रूप की बड़ाई करने की तुम्हें जरूरत ही क्या है?

नवम संख्या

फूल का विवाह

वैशाख का महीना है—विवाह का महीना। मैंने पहली तारीख को नसी बाबू के बगीचे में बैठ कर एक विवाह देखा। भविष्य के वर-कन्याओं की शिक्षा के निमित्त लिख रखता हूँ।

मल्लिका फूल का विवाह है। अपराह्न शैशव समाप्त प्राय है, कलिका-कन्या विवाह योग्य हो चुकी है। कन्या के पिता बड़े आदमी नहीं हैं, छोटे से वृक्ष हैं। इसके अतिरिक्त बहुत सी कन्याओं के भार ग्रस्त हैं। विवाह-सम्बन्ध की बातचीत बहुत चल रही थी, किन्तु कोई भी पक्का नहीं हुआ। उद्यान का राजा स्थलकमल निर्दोष पात्र अवश्य है, किन्तु वह बहुत ऊंचा है, इतनी निचाई तक वह नहीं उतरा। जवाफूल इस विवाह में असम्मत नहीं था, किन्तु वह बहुत ही क्रोधी स्वभाव का है, कन्या के सम्प्रदानकर्ता सहमत नहीं हुए। गन्धराज सुपात्र है, किन्तु बहुत अहंकारी है, प्रायः उसका मन नहीं मिलता। ऐसी अव्यवस्था के समय में भ्रमरराज विवाह के दलाल बनकर मल्लिका वृक्ष के घर आ पहुंचे। उन्होंने आकर कहा—

गुन्! गुन्! गुन्! लड़की है?"

मल्लिका वृक्ष ने पत्ती हिलाकर उत्तर दिया, "है।" भ्रमर ने पत्रासन ग्रहण करके कहा—"गुन् गुन् गुन् गुन्। गुण गुण। मैं लड़की को देखूंगा।"

वृक्ष ने शाखा झुकाकर मुदित नयना अवगुण्ठनवती कन्या को दिखाया ।

भ्रमर एक बार वृक्ष की प्रदक्षिणा करके आगये और बोले—"गुन् गुन् ! मैं गुण देखना चाहता हूँ । घूंघट खोलो ।"

लज्जाशीला कन्या किसी तरह भी घूंघट नहीं खोलती । वृक्ष ने कहा—"मेरी लड़कियाँ लजीली है । तुम जरा ठहरो, मैं मुख दिखा रहा हूं ।"

भ्रमर झटपट स्थल-कमल के बैठक खाने में गये । वहाँ राजकुमार के साथ हंसी मजाक करने लगे । इधर मल्लिका की सन्ध्या दादी आकर उसको बहुत समझाने लगीं—बोलीं—"एक बार घूंघट खोलो—नहीं तो वर न आवेगा—मेरी लाड़ली, मेरा चाँद, मेरा सोना" इत्यादि । कली ने कई बार सिर हिलाया, कितनी बार क्रोध करके मुंह फेर लिया, कितनी बार कहा—"दादी तू जा ।" किन्तु अन्त में सन्ध्या के स्निग्ध भाव से मुग्ध होकर उसने मुंह खोला । तब घटक (दलाल) महाशय झट से राजभवन से उतर कर चले आये और विवाह ठीक करने में लग गये । कन्या के परिमल से मुग्ध होकर बोले—गुन् गुन् गुन् ! गुणागुण ! कन्या अवश्य ही गुणवती है । घर में मधु कितना है ?

कन्या—सम्प्रदानकर्ता वृक्ष ने कहा—"सूची दीजिये, कौड़ी छदाम तक हिसाब चुका दूँगा ।" भ्रमर ने कहा—"गुन् गुन् गुन् ! आप में अनेक गुण है—विवाह ठीक करने का पारिश्रमिक ?"

कन्या सम्प्रदानकर्ता ने सिर हिला कर उत्तर दिया—"यह भी हो जायगा ।"

भ्रमर—मेरा कहना यह है कि पारिश्रमिक का कुछ अग्रिम क्या नहीं दिया जा सकता ! नकद दान बहुत गुण है, गुन् गुन् गुन् ।"

छोटा सा वृक्ष तब खीझ कर सभी शाखाओं को हिलाकर बोला—"पहले वर की बात कहो—वर कौन है ?"

भ्रमर—वर अति सुपात्र है । उनके अनेक गुण न्—न् ।

"कौन हैं वे ?"

"गुलाबलाल गंगोपाध्याय। उनके अनेक गुण—गुण—न्—न्।"

ये सब वार्तालाप मनुष्यों को सुनाई नहीं पड़ते, मैं केवल अफीम की कृपा से दिव्य कान पाकर ही इन सबको सुन रहा था। मैं सुनने लगा, कुलाचार्य महाशय पंखों को झाड़कर छः पैरों को फैलाकर, गुलाब की महिमा कीर्तन करने लगे। वे कह रहे थे कि, गुलाब वंश बहुत ही कुलीन है; क्योंकि ये लोग "फूले" वंश के हैं। यदि तुम यह कहो कि, सभी फूल ही 'फूले' में हैं तो भी गुलाब का गौरव अधिक है, क्योंकि ये लोग साक्षात् वाञ्छा माली की संतान हैं। वे स्वहस्त रोपित हैं। यदि कहो, इस फूल में काँटे हैं तो किस कुल में या किस फूल में नहीं हैं?

जो भी हो, चतुर दलाल ने किसी तरह सम्बन्ध ठीक कर लिया। झट से उड़ गये और गुलाब बाबू के घर जाकर उन्होंने खबर दी। गुलाब उस समय हवा के साथ नाचता हुआ, हंस-हंस कर उछल-उछल कर खेल रहा था। विवाह का नाम सुनकर वह आनन्दित हुआ। उसने कन्या की अवस्था पूछी। भ्रमर ने कहा—"आज कल में खिल जायगी।"

गोधूलि लग्न आ गया। गुलाब विवाह के लिए यात्रा का उद्योग करने लगे। 'उचिङ्कड़ा पक्षी नौबत बजाने लगा। मधु मक्खी ने शहनाई का बयाना लिया था, किन्तु रतौंधी का रोग रहने के कारण साथ न आ सकी। जुगनुओं ने झाड़ पकड़ लिया। आकाश में आतशबाजी छूटने लगी, कोयल आगे आगे बोलने लगी। बहुत बराती चल पड़े, स्वयं राजकुमार स्थलकमल दिन के अन्त में शरीर अस्वस्थ हो जाने के कारण न आ सके, किन्तु जवा फूलों का परिवार—श्वेत जवा, लाल जवा, भूरा जवा प्रभृति सवंश आये थे। करवी दल प्राचीन काल के राजाओं की तरह ऊंची डालियों पर चढ़कर आ पहुँचे। सेवती सहबाला बनने के लिए सजधज कर आया और हिलने लगा। रेशमी पहनावा पहन कर चम्पा आ खड़ा हुआ। बेला फूल ब्राण्डी पीकर आया था। उग्र गन्ध निकलने लगी, गन्धराज लोग बड़ी बहार लगाकर दलबद्ध होकर आये, और गन्ध फैलाकर देश को मस्त करने लगे। अशोक नशे से लाल होकर आ पहुँचा, उसके साथ चिउँटों का एक झुण्ड मुसाहब बनकर आ गया।

उनका गुण के साथ सम्बन्ध नहीं है, किन्तु दाँतों की ज्वाला बहुत है—किस विवाह में ऐसे बराती नहीं जुटते, और किस विवाह में वे लोग डंक से मारकर झगड़ा खड़ा नहीं करते ? कुरुबक, कुटज आदि अनेक बराती आये थे, बरेखिया या दलाल महाशय के मुंह से उनका परिचय पाइयेगा। सर्वत्र ही वे जाते-आते हैं, और कुछ कुछ शहद की चाट पाते रहते हैं।

मुझे भी निमन्त्रण मिला था, मैं भी गया। वहाँ मैंने देखा कि, वर पक्ष वालों की बड़ी मुसीबत है। हवा ने कहार का बयाना लिया था, उन्होंने तब हुम् हुम् करके बड़ी मर्दानगी दिखाई थी, किन्तु काम के समय कहाँ जा छिपे, किसी को पता नहीं। मैंने देखा कि वर, बराती, सभी अवाक् होकर स्थिर भाव से खड़े हैं। मल्लिका लोगों का कुल बिगड़ने जा रहा है, यह देखकर मैंने ही वाहक का कार्य करना स्वीकार किया। वर, बराती सबको उठाकर मैं मल्लिकापुर ले गया।

वहाँ मैंने देखा कन्याकुल में, सभी बहनें, आह्लाद से ही घूंघट खोल कर, मुँह खिलाकर, परिमल बिखेर कर सुखी हंस-सी हंस रही हैं। मैंने देखा, पत्ती के साथ पत्तो लिपट चली है, गंध के भाण्डार में चारो तरफ बिखरी सामग्री फैली हुई है—सौंदर्य के भार से सभी टूटते जा रहे हैं। जूही, मालती, बकुल, रजनीगन्धा प्रभृति सधवा-स्त्रियों ने स्त्री-आचार का पालन कर, वर की यथाविधि अभ्यर्थना की। मैंने देखा, पुरोहित उपस्थित हैं। नसी बाबू की नवम वर्षीया कन्या (अोवन्त कुसुम रूपिणी) कुसुमलता सूई-सूत लेकर खड़ी है। कन्या सम्प्रदानकर्ता ने कन्यादान किया। पुरोहित महाशय ने दोनों को एक सूत में गंथकर गँठबंधन कर दिया।

तब वर कोहबर में पहुंचाया गया। कितनी रसमयी मधुमयी सुन्दरियाँ वहाँ वर को घेरकर बैठ गयीं, इसका वर्णन मैं क्या करूं। बूढ़ी दादी जी टगर, सीधे सादे हृदय से बंधी हुई रसिकता करते करते सूख चलीं। रङ्गण के हंसी से भरे मुख पर हंसी समाती ही नहीं थी। जूही कन्या के पास जाकर सो रही। वर ने रजनीगन्धा को लाड़का

राक्षसी कहकर कितने ही मजाक किये। वकुल एक तो बालिका ठहरी, इसके सिवा उसमें जितने गुण हैं, रूप उतना नहीं हैं। वह एक कोने में जाकर चुपचाप बैठ रही। और झुमकाफूल वड़े आदमी की गृहिणी की भांति मोटी औरत है, नीली साड़ी फहराकर ठाट से बैठ गयी। तब—"कमल काका—उठो, घर चलें—रात हो गयी है, यह क्या, लुढ़क जाओगे क्या?" कुसुम यह कह कर मेरा शरीर ठेल रही थी, चौंककर मैंने देखा कि वहां कोई नहीं है, वह पुष्पशय्या कहाँ लुप्त हो गयी? मैंने सोचा, संसार अनित्य ही है—अभी है, अभी नहीं है। वह रम्य दम्पति का शय्यागृह कहाँ चला गया?—वे हास्यमुखी शुभ्रस्मित—सुधामयी पुष्प सुन्दरियाँ कहाँ चली गयीं। जहाँ सभी जायंगे, वहीं—स्मृति के दर्पणतल में, भूतसागर गर्भ में, जहाँ राजा, प्रजा, पर्वत, समुद्र ग्रह नक्षत्रादि चले गये हैं या चले जायंगे, वहीं ध्वंसपुर में। इस विवाह की तरह सभी शून्य में मिल जायंगे, सभी हवा में उड़ जायंगे—केवल रह जायगा, क्या? भोग? नहीं। भोग्य के न रहने से भोग नहीं रह सकता। तो क्या स्मृति?

कुसुम बोली—"उठो न, क्या कर रहे हो?"

मैंने कहा—"हट पगली, मैं ब्याह करा रहा था।"

कुसुम मेरे निकट आयी, हंस हंसकर पास खड़ी होकर आदर दिखा कर उसने पूछा—"किसका ब्याह काका?"

मैंने कहा—"फूल का विवाह।"

"ओः दुर्भाग्य, फूल का? क्या बताऊं। मैंने भी इस फूल का ब्याह कराया है।"

"कहाँ?"

"यही माला गूंथ दी है।" मैंने देखा, उस माला में मेरे वर-कन्या दोनों मौजूद हैं।

दशम संख्या

बड़ा बाजार

प्रसन्न ग्वालिनी के साथ अपने चिरविच्छेद की सम्भावना देख रहा हूँ। मैं जब से नसीराम बाबू के घर आया हूं तभी से उनके यहाँ खीर, मलाई, दही, दूध और माखन खा रहा हूँ। भोजन करते समय मैं सोचता था, प्रसन्न केवल परलोक में सद्गति पाने की इच्छा से पुण्य-संचय कर रही है। मैं जानता था, संसार वन में जो लोग पुण्य रूप मृग पकड़ने के लिए फंदा डालते हुये घूमते रहते हैं, उन में प्रसन्न ही सुचतुर है। भोजन के अन्त में प्रतिदिन ही प्रसन्न को परलोक में अक्षय स्वर्ग मिले, और इह लोक में नशे से होने वाला आनंद बढ़े, यही देवता के निकट मैं प्रार्थना करता था। किन्तु अब हाय! मानव चरित्र कैसी भीषण स्वार्थपरता से कलङ्कित है। अब वह मूल्य मांगती है।

इस कारण उसके साथ चिरविच्छेद की सम्भावना है। प्रथम दिन जब उसने दाम माँगे, तब मजाक में मैंने उसकी बात उड़ा दी। द्वितीय दिन मैं विस्मित हो गया—तृतीय दिन मैंने गालियाँ दीं। अब उसने दूध बन्द कर दिया है। कैसी भयानक बात है। इतने दिनों पर मैं जान गया कि मनुष्य जाति नितान्त स्वार्थपरायण है, इतने दिनों में मैं जान गया हूं कि जिन आशाओं, आकांक्षाओं को यत्नपूर्वक हृदयक्षेत्र में रोपकर विश्वासजाल से पुष्ट करते हो, वे सभी व्यर्थ हैं। अब मैं जान गया हूं कि भक्ति, प्रीति, स्नेह, प्रणय आदि भी व्यर्थ की गप हैं—आकाशकुसुम हैं। भोजबाजी हैं। हाय, मनुष्य जाति की क्या दशा होगी! हाय! प्रसन्न नामक ग्वालिन की गाय कब चोरी चली जायगी!

प्रसन्न के घर दूध-दही है, वह देगी, मेरे पास पेट है, खाऊंगा, उसके साथ मेरा यही सम्बन्ध है। इस में वह दाम माँगती है किस अधिकार से, यह मैं समझ न सका। प्रसन्न कहती है, मैं अधिकार-अनधिकार नहीं समझती, मेरी गाय है, मेरा दूध है, मैं मूल्य लूंगी। वह नहीं समझती कि गाय किसी की नहीं है, गाय खुद अपनी है,

दूध जो पीता है, उसी की है।

तो इस संसार में मूल्य लेने की एक रीति है, यह मैं स्वीकार करता हूं। केवल खाद्य-सामग्री ही क्यों, सभी सामग्रियों को मूल्य देकर खरीदना पड़ता है। दूध, दही, चावल-दाल, यहाँ तक कि विद्या-बुद्धि भी मूल्य देकर खरीदने की जरूरत पड़ती है। बहुत से लोग अच्छी बातें मूल्य देकर खरीदते हैं, हिन्दू लोग साधारणतः मूल्य देकर धर्म की खरीद करते हैं। यश और मान अति अल्प मूल्य में ही खरीदे जाते हैं। अच्छी सामग्री मूल्य देकर खरीदनी पड़ेगी, यह बात भी मैं कुछ कुछ समझ सकता हूं। किन्तु मनुष्य इस हद तक मूल्यप्रिय है कि मूल्य के बिना निकृष्ट सामग्री भी कोई किसी को नहीं देता। जो विष खाकर मरने की इच्छा करता है, उसे भी बाजार से मूल्य देकर खरीद कर विष खाना पड़ेगा।

इस कारण यह सारा संसार एक बाजार है—सभी यहां अपनी अपनी दुकानें सजाकर बैठे हुए हैं। सबका ही उद्देश्य है मूल्य की प्राप्ति। सभी यहां निरन्तर पुकार रहे हैं—"मेरी दुकान पर अच्छी चीजें हैं—खरीदार, आ जाओ।" सभी का एक मात्र उद्देश्य है खरीदार की आंखों में धूल झोंककर रद्दी माल की खपत चोरी से या अनुचत रीति से करना। दूकानदार, खरीदार में केवल इसका युद्ध चल रहा है कि कौन किसको धोखा दे सकता है। सस्ते भाव से खरीदने की अविरत चेष्टा को मनुष्य जीवन कहते हैं।

सोच विचार कर दुःखी मन से मैंने अफीम अधिक मात्रा में खा ली। मैंने सामने संसार का बाजार फैला हुआ देख लिया। असंख्य दूकानदार दूकानें सजाकर बैठे हैं—असंख्य खरीदार खरीद रहे हैं। मैंने देखा कि वे असंख्य दूकानदार और असंख्य खरीदार परस्पर को अंगूठा दिखा रहे हैं। मैं अंगौछा कंधे पर डाल कर बाजार से सौदा लाने को निकल पड़ा। पहले मैं रूप के बाजार में गया। जो चीज घर में नहीं है, उसी चीज की दूकान पर पहले जाना पड़ता है। मैंने देखा, संसार वहीं मछली का बाजार है। पृथ्वी की सुन्दरियां मछली बनकर

टोकरी दौरी के अन्दर प्रवेश कर रही हैं। मैंने देखा, छोटा बड़ा रोहू, कातला, मृगेल, इलिश, चुना, पूंटी, मागुर आदि मछलियां खरीदार के लिए पूंछ पटकती हुई छटपटा रही हैं। दिन जितना ही चढ़ता जा रहा है, विक्रय के लिए उतना ही वे नैराश्य से हाय हाय कर रही हैं। मछली बेचने वाली स्त्रियां पुकार कर कह रही हैं—"मछली लोगे! बेर वाली पोखरी की सस्ती मछली, यों ही सस्ते भाव से बेचूंगी—यह बोझ बिक जाने से ही मेरी प्राणरक्षा हो जाती।" कोई पुकार रही है—"मछली खरीदोगे जी—धनसागर की मीठी मछली है, जो खरीद लेता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष विविध मुण्डों में परिणत होकर उसके घर द्वार पर बिखर पड़ते हैं। जिसमें सामर्थ्य होगी वही खरीदेगा। सोने की हांडी में नेत्रों का पानी डालकर हृदयाग्नि की कड़ी आंच में उनको पकाया जाता है—किस खरीदार में साहस है, आ जाय सावधान! हीरा का कांटा—नाती पोते का झाड़ू—गले में अटक जाने से सास रूपी बिल्ली के परों पर गिरना पड़ता है। जो खरीदार होता है वह क्या कांटे की जलन से भाग जाता है?" कोई पुकार रही है—"अरे मेरी 'सरस पूंटी' बिक जाय तो मैं उठ पड़ूं। झोल में, कटु रस में, खट्टे रस में, तेल में, घी में, जल में, जिसमें ही डाल दोगे, रसोई अच्छी तैयार हो जायगी, गृहस्थी के दिन सुख से बीतेंगे मेरी इस सरस पूंटी के प्रभाव से।" कोई कह रही है—"कीचड़ उलीचकर चांदा मछली लायी हूं—देख कर खरीदार पागल हो जाता है। खरीद कर अपना घर उजाला कर लो।"

इस तरह देख सुनकर मछली खरीदने को तैयार हो गया; क्योंकि मेरे घर में निरामिष रसोई बनती है। मैंने देखा कि मछली के भी दलाल हैं। नाम है पुरोहित, दलाल के खड़े होने पर मैंने भाव पूछा। मैंने सुना, दर है "जीवन सर्वस्व!" जो मछली खरीदने की इच्छा हो, उसी मछली को खरीदो। एक ही दर है "जीवन सर्वस्व!" मैंने पूछा—"अच्छी बात है। कितने दिन खाऊंगा?" दो दिन, चार दिन। उसके बाद सड़कर दुर्गन्ध निकलने लगेगी।" भला इतने ऊंचे भाव से ऐसा

नश्वर सामग्री क्यों खरीदूँ ?—यह सोचकर मैं मछली बाजार से भाग चला। देखकर मछली बेचने वाली स्त्रियां उस मर्द को गालियां देने लगीं।

रूप का बाजार छोड़कर मैं विद्या के बाजार में गया। मैंने देखा, यहां फलमूल बेचे जाते हैं। एक जगह मैंने देखा, कितने तिलक टीका वाले शिखाधारी ब्राह्मण रेशमी धोती पहने, रामनामी ओढ़े पके नारियल की दुकान खोलकर खरीदारों को बुला रहे हैं—"हम बेचते हैं घटत्व पटत्व-घटत्रगत्व। घर में चावल रहने से है सत्व, नहीं तो न त्वं। द्रव्यत्व-जातित्व गुणत्व पदार्थ हैं। पिता की तेरहीं में बिदाई न देने से ही तुम हो जाते हो अपदार्थ। पदार्थतत्व नामक पका नारियल खाने में कड़ा होता है; उसके प्रथम छिलके पर लिखा रहता है कि ब्राह्मणी ही परम पदार्थ है। अभाव नामक नारियल चार प्रकार के होते हैं+—तुम्हारे घर में धन है, मेरे घर में नहीं है; यह है अन्योन्याभाव। जब तक मुझे नहीं मिलता तब तक है प्रागभाव। खर्च हो जाने से ही है ध्वंसाभाव। और हमारे घर में सदा ही अत्यन्त अभाव रहता है। अभाव नित्य है या अनित्य, इसमें यदि सन्देह हो, तो हमारे भण्डारे में झांककर देखो। तुम देखोगे नितान्त ही अभाव है। इसलिए हमारा पका नारियल खरीदो। व्याप्य, व्यापक, व्याप्ति हैं नारियल का गूदा। ब्राह्मण का हाथ हुआ व्याप्य, रजत (चांदी) हुआ व्यापक, और तुम्हारे देने से ही हो गयी व्याप्ति, इस पके नारियल को खरीदो, यह सब अभी तुम समझ जाओगे। देखो भाई, कार्य-कारण-सम्बन्ध गम्भीर बात है रुपया दे दो, इसी क्षण एक काम हो जायगा। कम देने से ही कार्य बिगड़ जायगा। और कारण को मैं क्या समझाऊं। यही दोपहर की धूप में मैं पका नारियल बेचने आया हूँ, इसका कारण ब्राह्मणी ही है। यदि तुम कुछ भी न खरीदोगे तो नारियल ढोना अकारण हुआ। इसलिए नारियल से सिर फोड़ कर प्राण दे दूँगा।

+नैयायिकों का कथन है कि अभाव चार प्रकार के हैं—अन्योन्याभाव प्रागभाव, ध्वंसाभाव, और अत्यन्ताभाव।

ब्राह्मणों का वह प्रखर तपनतप्त पसीने से भीगा हुआ ललाट और वाग्वितण्डाजनित अधर-सुधावृष्टि देखकर दया उत्पन्न हुई। मैंने पूछा—"हां भट्टाचार्य जी ! पका नारियल खरीदने में मुझे आपत्ति नहीं है, किन्तु दूकान में दात्र (नारियल काटने का औजार) है ? छीलूंगा किस तरह ?

"नहीं भाई, दाव मैं नहीं रखता।"

"तो तुम नारियल कैसे छीलते हो ?"

"हम दाव नहीं रखते, दांत से काटकर छिलका खाते है।"

सुनकर मैं ब्राह्मणों को नमस्कार करके पास की दूसरी दुकान पर चला गया।

मैंने देखा, इनके सामने ही 'एक्सपेरिमेन्टल साइंस' की दुकान है। कुछ साहब दूकानदार पके नारियल, बादाम, पिस्ता, सुपारी आदि फल बेच रहे है। मकान की दीवाल पर बड़े-बड़े पीतल के अक्षरों में लिखा हुआ है :—

MESSRS BROWN JONES AND ROBINSON
Nut Suppliers
Established 1757
ON THE FIELD OF PLASSEV
Messrs Brown Jones and Robinson
Offer to tho Indian Public
A Large Assortment of
Nuts
Physical, Metaphysical
Logical Illogical
and
Sufficient to Break
The Jaws And
Dislocate the Teeth of

ALL INDIAN YOUTHS
Who stand in need of Having
Their Dental Supor Fluities
CALCUTTA.

दूकानदार बुला रहे हैं:—आ जा काले बालक—Experimental Science खाना चाहता है तो आ जा! देखो यह १ नम्बर एक्सपेरिमेण्ट—घूंसा, इससे दांत उखड़ जाते हैं, माथा फट जाता है और हड्डी टूट जाती है। हम लोग इन एक्सपेरिमेन्टों को बिना मूल्य दिखाते हैं—दूसरों का माथा अथवा नरम हड्डी मिलने से ही काम बन जायगा, हम स्थूल पदार्थों का संयोग-वियोग सम्पन्न करने में पटु हैं—रसायनिक बल से या वैद्युतिक बल से, या चौम्बक बल से जड़ पदार्थों के विश्लेषण में ही हम सुदक्ष हैं—सर्वापेक्षा मुष्टिकप्रहार के बल से मस्तकादि के विश्लेषण में ही हम सफल हो चुके हैं। माध्याकर्षण, यौगिकाकर्षण, चौम्बकाकर्षण आदि तरह तरह के आकर्षणों की बात हमें विदित है; किन्तु केशाकर्षण विद्या में ही हम सर्वापेक्षा सुनिपुण हैं, इस संसार में जड़ पदार्थों के बहुत प्रकार के भेद दिखाई पड़ते हैं। यथा—वायु में अम्लजन और यवक्षारजन का सामान्य योग, जल में जलजन और अम्लजन का रासायनिक योग, और तुम लोगों की पीठ पर हमारे हांथों से मुष्टियोग। इसलिए यदि इन सब आश्चर्यजनक बातों को देखना हो तो सिर इधर बढ़ा दो; हम एक्सपेरिमेण्ट करेंगे, देखोगे, ग्रेविटेशन के बल से ये सब नारियल आदि तुम लोगों के मस्तकों पर पड़ेंगे, पार्कशन नामक अद्भुत शाब्दिक रहस्य का भी परिचय पाओगे और देखोगे, अपने मस्तिष्कस्थित स्नायविक पदार्थों के गुण से तुम वेदना का अनुभव करोगे।"

"अग्रिम मूल्य दे दो; तो इस से तुम चेरिटी (खैरात) में एक्सपेरिमेण्ट खा सकोगे।"

यह सब देख-सुन रहा था, ऐसे ही समय मैंने अकस्मात् देख लिया कि अंग्रेज दूकानदार, झपटकर ब्राह्मणों के पके नारियल के ढेरों पर जा

पड़े। देखकर, ब्राह्मण लोग नारियल छोड़कर, रामनामी फेंक, कच्छ खोलकर हांफते हुए भागने लगे। तब साहब लोग इन छोड़े हुए नारियलों को दूकान पर उठा ले गये। उन्हें विलायती अस्त्र से काट कर मज़े से खाने लगे। मैंने पूछा कि "यह क्या हुआ ?" साहब लोग इसे कहते हैं "Asiatic Researches" तब मैं डर गया और अपने शरीर में किसी प्रकार के "Anatomical researches" (चीर-फाड़ के अनुसंधान) की आशङ्का करके वहां से भाग गया।

साहित्य का बाजार भी मैंने देखा। देखा कि बाल्मीकि आदि ऋषिगण अमृतफल बेच रहे हैं ! मैं समझ गया कि यह है संस्कृत साहित्य। देखा, और कुछ मनुष्य लीची, पीच, अमरूद, अनन्नास, अंगूर आदि स्वादिष्ट फल बेच रहे हैं—मैं समझ गया कि यह है पाश्चात्य साहित्य। मैंने एक और दूकान देखी—असंख्य बच्चे और अबलाएं उसमें खरीद-बिक्री कर रहे हैं—भीड़ के कारण मैं उस में प्रवेश न कर सका—मैंने पूछा, "यह किस चीज की दूकान है ?"

बालकों ने कहा—"यह बंगला साहित्य की दूकान है।"

"कौन बेच रहा है ?"

"हम लोग ही बेचते हैं। दो एक बड़ेमहाजन भी हैं। इसके अतिरिक्त फालतू दूकानदारों का परिचय पत्रावली नामक ग्रंथ में आप पाइयेगा।"

"कौन खरीद रहा है ?"

"हम ही लोग।"

विक्रेय पदार्थ देखने की इच्छा हुई। मैंने देखा, समाचार पत्र के कागज में लपेटे हुए कुछ कच्चे केले हैं।

मैं उसके बाद तेली टोले में चला गया। मैंने देखा, जितने उम्मीदवार मुसाहब हैं, सभी तेली का वेष धारण कर तेल के बरतन लिये पांत पांत में बैठ गये हैं। तुम्हारी टेंट में नौकरी है, यह सुन लेने के साथ ही वे पैर खींच लेते हैं, और बरतन निकाल कर तेल की मालिश करने लगते हैं। नौकरी न रहने पर भी, यदि रहे, इस भरोसे से पैर खींच लेते हैं और तेल मलने लगते हैं। तुम्हारे पास नौकरी नहीं है—नहीं

है, नहीं है—नकद रुपये तो हैं—अच्छा वही दे दो—तेल दे रहा हूँ। किसी की प्रार्थना यह है—अपनी दूकान में बैठकर तुम जब ब्राण्डी पियोगे, मैं तुम्हारे चरणों में तेल मलूंगा—मेरी कन्या का विवाह हो जाना चाहिए। किसी का आदेश है, तुम्हारे कानों में अविरत सुगन्धितो तेल डालूंगा—मकान की दीवाल खड़ी कर सकूं, ऐसा उपाय होना चाहिये। किसी की कामना है, तुम्हारे कोषागार में बत्ती जला दूँगा—मेरा समाचारपत्र चल जाना चाहिये। मैंने सुना है, तेलियों की खींचतान से बहुतों के पैर लंगड़े हो गये हैं। मुझे शंका हुई कि पीछे शायद कोई तेली अफीम पाने के लिए मेरे पैरों में तेल देना न शुरू कर दे। मैं भाग निकला।

उसके बाद मैं हलवाईपट्टी में चला गया। समाचार-पत्र लेखक नामकर हलवाईगण, गुड़ की बनी मिठाई की दूकान खोलकर नकद मूल्य में बेच रहे हैं—रास्ते में लोगों को पकड़कर मिठाई थमाकर हाथ पसार देते है—मूल्य न मिलने पर कपड़े उतार लेते हैं, इधर उनके द्वारा बेचे जाने वाले माल की प्रशंसा या यश कीदुर्गन्ध से पथिक नाक दबा कर भाग रहे हैं। दूकानदार लोग बिना गुड़ की ही आश्चर्यजनक मिठाई तैयार करके सस्ते भाव में बेच रहे हैं। कोई एक रुपये में, चार आने में, एक आना दो आने में, कोई केवल खातिरवश—कोई एक बार का फलाहार पाकर ही अपना माल गले लगा देते हैं—कोई तो ऐसे हैं कि बाबू की गाड़ी में चढ़ने का अवसर पा लेने से ही यश विक्रय कर देते हैं। अन्यत्र देखा कि राजपुरुषगण मिठाई वाले बनकर रायबहादुर, राजाबहादुर आदि खिताब, खिलअत, निमन्त्रण, धन्यवाद आदि मिठाइयों की दूकान खोले बैठे हुए हैं—चन्दा, सलाम, खुशामद, डाक्टरखाना, राह घाट के मूल्य पर मिठाई बेच रहे हैं। विक्रय की अति अव्यवस्था है—कोई सर्वस्व देकर एक दोना मिठाई नहीं पा रहा है, कोई केवल सलाम से ही डेढ़ मन ले जा रहा है। इस तरह मैंने अनेक दूकानें देखीं, किन्तु सर्वत्र सड़ा माल आधे दाम में बेंचा जा रहा है। विशुद्ध दूकान मुझे नहीं दिखाई पड़ी। केवल एक दूकान मैंने ऐसी

देखी जो बहुत बढ़िया थी।

मैंने देखा, दूकान में घोर अन्धकार है—कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। पुकारने से दूकानदार का उत्तर नहीं मिला, केवल एक सब प्राणियों के मन में भय उत्पन्न करने वाला अनन्त गर्जन सुनाई पड़ा। अल्प प्रकाश में द्वार के सम्मुख फलक पर लिखित ये बातें मैंने पढ़लीं।

यह है यश की दूकान।

"बेचने का सामान अनन्त यश।
विक्रेता—काल।
मूल्य—जीवन।"

जीवित दशा में कोई यहां प्रवेश न कर सकेगा। और कहीं भी सुयश बेचा नहीं जाता।

पढ़कर मैंने सोचा, यश की मुझे आवश्यकता नहीं है। कमलाकान्त की प्राण रक्षा होने से बहुत यश मिलता रहेगा।

न्याय के बाजार में गया। वहां मैंने वही कसाईखाना देखा। कोई सिर पर टोपी रखे, कोई सिर पर शमला पहने—छोटे-बड़े कसाई हाथ में छुरी लिये गाय-बैलों को काट रहे हैं महिष आदि सभी बड़े पशु सींग हिलाते हुए भाग रहे है—बकरे, भेंड़ें और गाय आदि छोटे पशु पकड़े जा रहे हैं। मुझे देखकर गाय समझ कर एक कसाई बोला—"यह भी गाय है इसको काट देना चाहिये।" मैं दूर ही से सलाम करके भाग चला।

फिर तो बड़ा बाजार में घूमने की साध नहीं रही—किन्तु प्रसन्न के ऊपर क्रोध रहने के कारण एक बार दही का बाजार देखने चला गया। जाकर पहले ही मैंने देखा कि वहां खुद कमलाकान्त चक्रवर्ती नामक ग्वाला है,—पोथा रूप सड़े मट्ठे की हांडी लेकर बैठा हुआ है,—स्वयं मट्ठा पी रहा है, और दूसरों को पिला रहा है।

तब मैं चौंक पड़ा—आंखें खोलकर देखने लगा—देखा, नसी बाबू के ही मकान में हूं। मट्ठे की हांडी मेरे पास जरूर है। प्रसन्न एक हांडी मट्ठा लाकर मुझ से अनुरोध कर रही है,—"चक्रवर्ती महाशय,

क्रोध मत करो। आज अब दूह दही नहीं है—यह मट्ठा मैं लायी हूं—इसके दाम न देने पड़ेंगे।"

एकादश संख्या

मेरा दुर्गोत्सव

सप्तमी पूजा के दिन किसने मुझे इतनी अधिक मात्रा में अफीम खाने को कहा। मैं क्यों प्रतिमा देखने चला गया! जिसको मैं कभी न देखूंगा, उसे मैंने क्यों देख लिया! इस माया को किसने दिखाया!

मैंने देखा—अकस्मात् कालका स्रोत दिगन्त में व्याप्त होकर प्रबलवेग से बह रहा है—मैं बेड़े पर चढ़कर तैरता चला जा रहा हूँ। मैंने देखा—अनन्त कूलविहीन अंधियारी में, वात्याविक्षुब्ध तरङ्ग, सङ्कुलवह स्रोत—बीच में उज्ज्वल नक्षत्रगण जग रहे हैं, बुझ रहे हैं—फिर जग रहे हैं। मैं बिलकुल अकेला हूँ—अकेला होने के कारण भय मालूम होने लगा—नितान्त अकेला मातृविहीन—'मा! मा!' कहकर पुकार रहा हूँ। मैं इस काल-समुद्र में मातृसम्बोधन के लिए आया हूँ। कहाँ हो माँ? कहाँ हो मेरी मा? कहाँ हो कमलाकान्त जननी वङ्गभूमि। इस घोर-काल समुद्र में कहाँ हो तुम। सहसा स्वर्गीय वाद्य से कानों के छिद्र भर गये—दिङ्मण्डल में प्रभातारुणोदयवत् लोहितोज्ज्वल आलोक बिखर गया—स्निग्ध मन्द पवन वह चला—उस तरङ्ग सङ्कुल जल राशि के ऊपर, दूर प्रान्त में मैंने देखी,—सुवर्ण मण्डिता इस सप्तमी की शारदीया प्रतिमा। जल में हंस रही है, बह रही है, आलोक बिखेर रही है। यही क्या माँ हैं? हां, यही मां, हैं। मैं पहचान गया, यही हैं मेरी जननी—जन्म भूमि—यही मृण्मयी—मृत्तिका रूपिणी—अनन्त रत्न भूषिता इस समय काल के गर्भ में समाई हुई रत्नमण्डित दश भुजायें—दश दिशायें दश दिशाओं में प्रसारित हैं, उसमें नाना आयुध-रूपों में नाना शक्तियाँ शोभित हैं, पदतल में श विमर्दित हैं पदत्राश्रित वीरजन-केशरी शत्रुनिपीड़न

में नियुक्त है। इस मूर्ति को अभी मैं न देखूंगा—आज न देखूंगा—कल न देखूंगा—कालस्रोत को पार किये बिना न देखूंगा—किन्तु एक दिन देखूंगा—दिग्भुजा नानाप्रहरण प्रहारिणी शत्रुमर्दिनी, वीरेन्द्र पृष्ठ विहारिणी,—दक्षिण में लक्ष्मी भाग्यरूपिणी, बायीं ओर वाणी-विद्या-विज्ञान मूर्तिमयी, साथ में बलरूपी कार्तिकेय, कार्यसिद्धि रूप गणेश, मैंने उस कालस्रोत के बीच देखा, इस सुवर्णमयी बङ्गप्रतिमा को।

कहाँ मुझे फूल मिल गये, मैं बता नहीं सकता—किन्तु उस प्रतिमा के पैरों के नीचे मैंने पुष्पाञ्जलि चढ़ा दी,—मैं पुकार उठा, सर्वमङ्गल मांगल्ये शिवे, मेरी सर्वार्थ साधिके! असंख्य सन्तान कुल पालिके! धर्म-अर्थ सुख-दुख दायिके! मेरी पुष्पाञ्जलि तुम ग्रहण करो। मैं यह भक्ति, प्रीति, शक्ति हाथ में लेकर तुम्हारे पैरों के नीचे पुष्पाञ्जलि चढ़ा रहा हूँ, तुम अनन्त जल-मण्डल त्यागकर इस विश्वविमोहिनी मूर्ति को एकबार जगत् के सम्मुख प्रकट कर दो। आओ मा! नवरागरंगिणी, नवबल-धारिणि, नवदर्प से दर्पिणी, नवस्वप्न दर्शिणि! आओ मा घर में आओ— छः करोड़ सन्तान एक साथ एक ही समय में, द्वादशकोटि हाथ जोड़ कर, तुम्हारे चरण कमलों की पूजा करेंगे। छः करोड़ मुखों से पुकारेंगे, मा प्रसूति अम्बिके! धात्रि धरित्रि धनधान्यदायिके, नगाङ्क शोभिनि नगेन्द्रबालिके! शरत् सुन्दरी चारुपूर्ण चन्द्रभालिके! हम पुकारेंगे,—सिन्धुसेविते सिन्धुपूजिते सिन्धुमथनकारिणी! अनन्त श्री अनंत काल स्थापिनी! शक्ति प्रदान करो सन्तानों को, अनन्त शक्ति देनेवाली तुमको क्या कहकर पुकारें मा? इन छः करोड़ मुण्डों को उन पैरों के नीचे लुण्ठित करेंगे—इन छः करोड़ कंठों से उस नाम को लेकर हुंकार करेंगे,—इन छः करोड़ शरीरों को तुम्हारे लिए गिरा देंगे—न कर सकेंगे, तो इन द्वादश कोटि नेत्रों से तुम्हारे लिए रोवेंगे। आओ मा, घर में आओ, जिनकी छः करोड़ सन्तान हैं, उनको चिन्ता क्या है?

देखते देखते फिर मैं न देख सका—उस अनन्त कालसमुद्र में वह प्रतिमा डूब गयी। अन्धकार में वह तरंग संकुल जलराशि व्याप्त हो गई, जल-कल्लोल से विश्व संसार भर गया! तब मैं हाथ जोड़कर सजलनेत्रों

से पुकारने लगा—उठो मा हिरण्मयी बंग भूमि ! उठो मा, इस बार मैं सुसन्तान होऊंगा, सत् पथ में चलूंगा—तुम्हारा मान रखूंगा। उठो माँ देवि देवानुगृहीते ! इसबार अपने को भूलूंगा—भ्रातृवत्सल होऊंगा, दूसरों का मंगल करूंगा—अधर्म, आलस्य, इन्द्रियभक्ति त्याग दूँगा—उठो मा अकेला मैं रो रहा हूं, रोते रोते आँखें चली गयीं माँ !

उठो, उठो मा, बंग जननी ! मा उठी नहीं। क्या उठेंगी ?

आओ भाइयो ! हम लोग इस अन्धकार कालस्रोत में कूद पड़ें। आओ, हम द्वादश कोटि भुजाओं से उस प्रतिमा को उठाकर छः करोड़ मस्तकों पर ढो लावें। आओ अन्धकार में भय क्या है ? वे जो नक्षत्र रह रहकर जग रहे हैं, बुझ रहे हैं—वे राह दिखावेंगे—चलो ! चलो ! असंख्य बाहुओं के प्रक्षेप से इस काल समुद्र को ताड़ित, मथित, व्यस्त-करके हम लोग तैरने लगें—उस स्वर्ण प्रतिमा को माथेपर ढो लावें। भय क्या है, बहुत होगा, डूब जायंगे, मातृहीन को जीवन रखने की क्या जरूरत है ? आओ प्रतिमा को उठा लावें, पूजा की बड़ी धूम मच जायगी। द्वेष के बकरे को बलि के तख्ते पर डालकर सत्कीर्ति खड्ग से मा के सम्मुख बलि चढ़ावेंगे—कितने पुरावृत्तकार ढोल-मृदंग कन्धे पर लिए पूजा-उत्सव के बाजे बजाकर आकाश को विदीर्ण करेंगे—कितने ढोल—काँसे—कड़े—नगाड़ों से बंगभूमि की जय बजेगी कितनी शहनाइयाँ सुर बाँधकर गाने लगेंगी, "कितना नाचती हो जी !" पूजा की बड़ी धूम मच जायगी। कितने ब्राह्मण पंडित पूड़ी-मिठाई के लोभ से बंगपूजा में आकर पत्तल उड़ावेंगे—कितने देशी विदेशी भद्र अभद्र आकर माता के चरणों में प्रणाम चढ़ावेंगे—कितने दीन-दुःखी प्रसाद खाकर पेट भरेंगे, कितनी नर्तकियां नाचेंगी, कितने गायक मंगल गावेंगे। कितने करोड़ भक्त पुकारेंगे मा ! मा ! मा ।

जय जय जय जयदात्रि ।
जय जय जय बंग जगद्धात्रि ॥
जय जय जय सुखदे अन्नदे ।
जय जय जय वरदे शर्मदे ॥

जय जय जय शुभे शुभंकरि।
जय जय जय शान्ति क्षेमङ्करि॥
द्वेपक—दलनि, सन्तान पालिने।
जय जय दुर्गे दुर्गति नाशिनी॥
जय जय जय लक्ष्मि वारीन्द्रबालिके।
जय जय जय कमलाकान्त पालिके॥
जय जय भक्ति—शक्ति दायिके।
पाप—ताप—भय—शोक नाशिके॥
मृदुल—गम्भीर—धीर भाषिके।
जय माँ कालि करालि अम्बिके॥
जय हिमालय—नग बालिके।
अतुलित पूर्णचन्द्र मालिके॥
शुभे शोभने सर्वार्थ साधिके।
जय जय शान्ति शक्ति कालिके॥
जय माँ कमलाकान्त पालिके।
नमोऽस्तु ते देवी वरप्रद शुभे।
नमोऽस्तु ते कामचरे सदाध्रुवे॥
ब्रह्माणीन्द्राणि रुद्राणि भूतभव्ये यशस्विनि।
त्राहिमा सर्व दुःखेभ्यो दानवानां भयङ्करी।
नमोऽस्तु ते जगन्नाथे जनार्दनि नमोऽस्तुते।
प्रियादान्ते जगन्मातः शैलपुत्रि बसुन्धरे॥
त्रायस्व मां विशालाक्षि भक्तानामार्त्तिनाशिनि।
नमामि शिरसा देवि बन्धनोऽस्तु विमोचितः। ⊛

द्वादश संख्या

एक गीत

"सुन प्रसन्न, तुझे एक गीत सुना रहा हूं।"

प्रसन्न ग्वालिनबोली,—"इस समय गाना सुनने की फुरसत मुझे नहीं है—दूध देने जाने का समय होगया।"

कमलाकान्त—आओ आओ प्यारे आओ।

प्रसन्न—छिः छिः छिः। मैं क्या तुम्हारी प्यारी हूं ?

कमलाकान्त—हरे राम! तुम प्यारी क्यों होगी ? मेरा यह गीत है—आओ आओ प्यारे आओ, आधे आँचल पर बैठो।"

सुर साधकर मैं कीर्तन करने लगा तो प्रसन्न दूध का बरतन रखकर बैठ गयी। मैंने शुरू से अन्त तक गीत गया।

आओ आओ प्यारे आओ
आधे आँचल पर तुम बैठो।
नेत्रों की परिपूर्ण तृप्ति से मैं देखूं,
मेरे आँचल पर तुम लेटो॥
बहुत दिनों पर कृपा हुई,
विधि की अब मेरे ऊपर,
धन तुम जो हो तुम्हें मिलाया,
उसने ही अब लाकर।
मणि भी नहिं तुम, माणिक नहिं तुम,
हार बनाकर पहनूं जो मैं।
फूलों के भी पुंज नहीं तुम,
केशों का शृंगार करूं मैं॥
यदि विधि नारी रूप न देता,
गुणागार तुम को मैं लेकर।
घूम घूम कर जग में फिरती,
मैं तव साथ सदा ही घर घर॥

जब सुधि आती है तब प्यारे,
वृन्दावन की ओर निहारूं ।
केशों को बिखरा देती हूं
बांधूं नहिं मैं तनमन वारूं ॥
जाकर रन्धन गृह में बैठूं,
तवगुण गाकर जी बहलाती ।
रोती हूं तब प्रेम में पड़कर,
धुआं लगा है भान दिखाती ॥

छन्दों का मेल तो अच्छा बना है। 'बैठो' और 'लेटो' मिल गया है। किन्तु अपनी भाषा में ऐसा मोह मन्त्र और सुन लेने की बड़ी साध मन में रह गयी है। जब मैंने यह गान पहले पूरे ध्यान से सुना था, तब यह विचार उठा था कि नीलाकाश के नीचे एक छोटी सी चिड़िया बनकर मैं यह गीत गाऊं—यह विचार उठा था कि उस विचित्र सृष्टि निपुण कवि की सृष्टि देववांसुरी लेकर, बादलों के ऊपर जो वायु स्तर शब्दशून्य है, दृश्यशून्य है, जहां से यह पृथ्वी दिखाई नहीं पड़ती, वहीं बैठकर, उस मुरली में अकेला यह गीत गाऊं—इस गीत को मैं कभी भूल न सका, कभी भूल न सकूंगा ।

आओ आओ प्यारे आओ ।+

लोगों के मन में क्या है, मैं बता नहीं सकता, किन्तु कमलाकान्त चक्रवर्ती समझ न सका कि इन्द्रिय-परितृप्ति में सुख है। जो पशु इन्द्रिय परितृप्ति के लिए स्पर्श-दर्शन की आकांक्षा रखता हो, उसको कभी कमलाकान्त शर्मा की पोथा-मुक्तावली को पढ़ने में तत्पर न होना चाहिए। मैं विलास-प्रिय के मुंह से "आओ आओ प्यारे आओ" समझ नहीं सकता। किन्तु मैं यह समझ सकता हूं कि मनुष्य मनुष्य के लिए हुआ था—यह हृदय दूसरे के हृदय के लिए हुआ था—उसी हृदय हृदय से संघात, हृदय हृदय से मिलन हो यह है मनुष्य जीवन का सुख। इह जन्म में मनुष्य-हृदय में एकमात्र तृषा है,—अन्य हृदय की कामना। मनुष्य हृदय अनवरत दूसरे हृदय

+ पाठकों को गीत के साथ मिलाकर देखना होगा ।

को बुला रहा है—"आओ आओ प्यारे आओ।" छोटी छोटी सभी प्रवृत्तियां शरीर-रक्षा के निमित्त हैं—महती प्रवृत्ति सबके उद्देश्य से है,—"आओ आओ प्यारे आओ।" तुम नौकरी करते हो खाने के लिए—किन्तु यश की आकांक्षा करते हो दूसरों का अनुराग लाभ करने के लिए, जन समाज के हृदय को अपने हृदय के साथ मिलित करने के लिए। तुम जो परोपकार करते हो, वह दूसरों के हृदय का क्लेश जो अपने हृदय में अनुभव करते हो उसी के कारण। तुम जो क्रोध करते हो, वह अपने मन के अनुसार काम न होने के ही कारण, हृदय हृदय में न आने के कारण। सर्वत्र ही यही रव उठ रहा है—"आओ आओ प्यारे आओ।" सभी कर्मों का यही मन्त्र है—"आओ आओ प्यारे आओ।" जड़ जगत् का नियम है आकर्षण। बृहत् ग्रह उपग्रह को बुला रहा है—"आओ आओ प्यारे आओ।" सौर-पिण्ड बृहत् ग्रह को बुला रहा है—"आओ आओ प्यारे आओ।" जगत् दूसरे जगत् को बुला रहा है—"आओ आओ प्यारे आओ। परमाणु परमाणु को बुला रहा है,—आओ आओ प्यारे आओ। सभी जड़पिण्ड, ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु—सभी इस मोहमन्त्र में बँधे जाकर घूम रहे हैं। प्रकृति पुरुष पुरुष को बुला रही है,—"आओ आओ प्यारे आओ।" जगत् की यही गम्भीर अविश्रान्त ध्वनि है—"आओ आओ प्यारे आओ।" कमलाकान्त का प्यारा क्या आजायगा ?

"आधे आँचल पर तुम बैठो।"

इस तृण शस्य समाच्छन्न कण्टकादि से कर्कश संसार अरण्य में, हे वाञ्छित ! तुमको मैं और कौन आसन दूँ, मेरे इस हृदयावरण के आधे भाग पर तुम बैठो। कुशकण्टकादि से तुमको ढक रखने के लिए मैं अपना यह अङ्ग अनावृत कर रही हूँ—मेरे आँचल पर बैठो। जिससे मेरी लज्जा रक्षा, मान रक्षा होती है, जिससे मेरी शोभा है, हे मिलित ! तुम भी उसका आधा ग्रहण करो—आधे आँचल पर बैठो। हे दूसरों के हृदय, हे मनोरञ्जन, हे सुखद ! मेरे पास आओ, मुझे स्पर्श करो, मैं तुम में संलग्न हो जाऊँगी। अपना आसन तुम कहीं दूर मत

ग्रहण करना—मेरे शरीर से सटे हुए आँचल के आगे भाग पर तुम बैठो हे कमलाकान्त ! हे दुर्विनीत ! हे आजन्म विवाहशून्य ! तुम इसका यह अर्थ मत समझ लेना कि यह शान्तिपुरी बूटीदार आँचल का आधा भाग है। तुम जिस आँचल के अर्धभाग पर बैठोगे उसको बुनने वाला आज तक कोई पैदा नहीं हुआ है। मन की नग्नता, ज्ञान वस्त्र से आच्छादित है। आधे से अपने हृदय को तुम ढक रखो, आधे पर वाञ्छित को बैठा दो। तुम हो मूर्ख—तो भी तुमसे बढ़कर मूर्ख यदि कोई हो तो उसको बुलाओ—

"आओ आओ प्यारे आओ,
आधे आँचल पर तुम बैठो।
नेत्रों की परिपूर्ण तृप्ति से मैं देखूं,
मेरे आँचल पर तुम लेटो॥

किसने कब देखा है ? तुमने बहुत धन उपार्जन किया है—कभी नेत्रों की पूरी तृप्ति से आत्मधन को तुम देख सके हो ? तुमने यशस्वी होने के लिए प्राण न्योछावर कर दिया है—किन्तु आत्मयशोराशि देखकर क्या तुम्हारे नेत्रों को पूर्ण सन्तोष हुआ है ? रूप तृष्णा में पड़कर तुमने इस जीवन को बिता दिया—जहाँ फूल खिलते हैं, फल हिलते रहते हैं, जहाँ पक्षी उड़ते रहते हैं, जहाँ बादल दौड़ते रहते हैं, गिरिशृङ्ग उठते हैं, नदी बहती है, जल झरता है, तुम उसी जगह रूप की खोज में घूमते रहे हो—जहाँ बालक प्रफुल्ल मुखमण्डल आलोकित करके हँसता है, जहाँ युवती क्रीड़ाभार से टूटी टूटी सी होकर शङ्कित गति से जाती है, जहाँ प्रौढ़ा नितान्त स्फुटिता मध्याह्न-कमलिनी की तरह अकातर भाव से रूप का विकास करती है, उसी जगह तुम रूप की खोज में घूमते रहे हो। क्या कभी नेत्रों की पूरी तृप्ति से तुमने रूप देखा है ? तुमने क्या यह नहीं देखा कि देखते देखते कुसुम सूख जाता है, देखते देखते फल पक जाता है, गिर जाता है, सड़ जाता है, गल जाता है, पक्षी उड़ जाते हैं, बादल चले जाते हैं, पर्वत धुएँ से छिप जाता है, नदी सूख जाती है, नक्षत्र आँखों से ओझल हो जाते हैं ?

शिशु की हंसी को रोग हरण कर लेता है, युवती का लज्जा-संकोच काहे से नहीं जाता ? प्रौढ़ा अपनी उम्र के कारण सूख जाती है। यह संसार का दुर्भाग्य है—कोई कुछ नेत्रों की पूर्ण तृप्ति से देख नहीं पाता। अथवा इस संसार का सौभाग्य है—कोई कुछ भी नेत्रों की परिपूर्ण तृप्ति से देख नहीं सकता। गाते ही संसार का सुख है—चंचलता ही संसार का सौन्दर्य है। नेत्रों को तृप्ति नहीं होती। वैसे नेत्र हमें नहीं मिले हैं। पा लेने से ही यह संसार दुःखमय हो जाता है। परितृप्ति राक्षसी हमारे सभी सुखों को निगल जाती है। जिस कारीगर ने इस परिवर्तनशील संसार को और इन अतृप्त नेत्रों को बनाया है, उनकी कारीगरी के ऊपर कारागरी, यह इच्छा कि नेत्रों की पूर्ण तृप्ति से तुमको देख सकूं; जगत् परिवर्तन शील है, नेत्र भी अतृप्त रहते हैं, फिर भी वासना है—नेत्रों की परिपूर्ण तृप्ति से तुमको देखूं।

हे रूप ! हे बाह्य-सौन्दर्य ! हे अन्तः प्रकृति के साथ सम्बन्ध रखने वाले ! तुम मेरे पास आओ, नेत्रों की पूर्ण तृप्त से तुमको देखूं। दूर बैठे रहने से देखना नहीं होगा, क्योंकि, देखने का काम केवल नेत्रों का नहीं है। संस्पर्श या निकटता के विना मन की बिजली नहीं बहती—हम लोग सर्व शरीर में देखते रहते हैं। मन से दूसरे मन में बिजली के चलने से नेत्रों की तृप्ति होगी। हाय ! किस बात से नेत्रों को तृप्ति होगी ? नेत्रों में तो पलक हैं।

"बहुत दिनों पर कृपा हुई
विधि की अब मेरे ऊपर,
धन तुम जो हो, तुम्हें मिलाया
उसने ही अब लाकर।"

मैं कभी कभी सोचने लगता हूं कि केवल दुःख के परिमाण के ही कारण दयावश विधाता ने दिन की रचना की है। नहीं तो, काल अपरिमेय और मनुष्य दुःख अपरिमित होता। हम लोग इस समय यह कह सकते हैं कि हम दो दिनों से, दो महीनों से, या दो वर्षों से दुःख भोग कर रहे हैं, किन्तु दिन रात्रि का परिवर्तन न रहने से, काल की रात का

चिह्न शून्य हो जाने से, कौन यह न समझने लगता कि, मैं अनन्त काल से दुःख भोग कर रहा हूं। तो उस हालत में आशा को ठहरने की जगह नहीं मिलती—इतने दिनों के बाद फिर दुःख का अन्त होगा, यह बात कोई सोच नहीं सकता—वृक्षादि शून्य अनन्त मैदान की तरह, जीवन का पथ उत्तीर्ण होने योग्य न रह जाता—जीवन यात्रा असह्ययन्त्रणावत् हो जाती। इस कारण यह वृहत् जगत् केन्द्र सूर्य का मार्ग हमारे दुःखों का मानदण्ड है। दिनों की गणना करने में सुख है। सुख है इसी कारण दुखिया मनुष्य दिन गिनते रहते हैं। दिन गणना करना दुःख में विनोद का अनुभव करना है! किन्तु ऐसे भी दुःखी हैं, जो दिनों की गणना नहीं करते, उनके लिये दिनों को गिनने से दुःख में विनोद नहीं मिलता। मैं हूँ कमलाकान्त चक्रवर्ती, भूल से मैंने इस ससार में जन्म ग्रहण किया है। मैं हूं सुखहीन, आशाहीन, उद्देश्यशून्य, आकांक्षाशून्य, मैं किस लिये दिवस गणना करूँगा? इस संसार समुद्र में मैं वहता हुआ तृण हूं, संसार वात्या में मैं चक्कर लगाने वाला धूलिकण हूँ, संसारारण्य में मैं निष्फल वृक्ष हूँ, संसाराकाश में मैं जल शून्य बादल हूँ, मैं किसलिये दिन गिनूंगा?

गिनूंगा। मुझे एक दुःख, एक सन्ताप, एक भरोसा है। मैं १२०३ साल से दिन गिनता हूँ। जिस दिन बंग देश में हिन्दू नाम लुप्त हो गया, उसी दिन से मैं गिनता हूँ? जिस दिन सत्ताइस अश्वारोहियों ने बंग देश को जीत लिया था, उसी दिन से मैं दिन गिनता रहता हूं। हाय मैं कितना गिनूंगा। दिन गिनते गिनते महीना हो जाता है, महीना गिनते-गिनते वर्ष हो जाता है, वर्ष गिनते गिनते शताब्दी हो जाती है, शताब्दी को भी बार बार सात बार गिनता हूँ। कहो, बहुत दिनों से मन की इच्छा के अनुसार विधाता ने कहाँ मिला दिया। मैं जो चाहता हूं उसे कहाँ मिला दिया? मनुष्यत्व कहाँ मिला? एक जातीयता कहाँ मिली? ऐक्य कहाँ है? विद्या कहाँ है? गौरव कहाँ है? श्री हर्ष कहाँ हैं? भट्ट नारायण कहाँ हैं? हलायुध कहाँ हैं? लक्ष्मण सेन कहाँ है? अब क्या नहीं मिलेंगे? हाय! सभी के इच्छित मिल जाते हैं, कमला-

कान्त के न मिलेंगे।

मणि भी नहिं तुम, माणिक नहिं तुम
हार बनाकर पहनूं जो मैं।

विधाता ने जगत् को जड़मय क्यों बनाया है? रूप जड़ पदार्थ क्यों है? सभी अशरीरी क्यों नहीं हुए। ऐसा होने से हृदय से हृदय किस तरह मिलता? यदि रूप को शरीर का प्रयोजन था, तो विधाता ने तुम्हारा और मेरा एक ही शरीर क्यों नहीं बनाया? ऐसा होने से तो फिर बिछोह न होता। अब क्या एक शरीर नहीं हो सकता? मेरे शरीर में इतना स्थान है— उसमें कहीं क्या मैं तुमको नहीं रख सकता? तुमको गले में सटाकर क्या मैं हृदय पर झुलाकर नहीं रख सकता? हाय! तुम मणि नहीं हो, माणिक नहीं हो कि हार बनाकर गले में पहन लूं।

और हे बंग भूमि! तुम क्यों मणि माणिक्य नहीं हो गयीं, तुमको हार बनाकर मैं क्यों गले में पहन नहीं सका? तुमको यदि मैंने गले में पहन लिया होता, तो मुसलमान के मेरे हृदय पर पदाघात न करने से उसकी पदरेणु तुमको स्पर्श नहीं कर सकती थी! तुमको सोने के आसन पर बैठाकर हृदय पर झुलाते झुलाते देश देश में दिखाता रहता। यूरोप, अमेरिका, मिस्र, चीन देखते कि तुम मेरी कैसी उज्ज्वल मणि हो।

"यदि विधि नारी रूप न देता
गुणागार तुमको मैं लेकर।
घूम घूम कर जग में फिरती
मैं तव साथ सदा ही घर घर।"

पहले आह्वान,—"आओ आओ प्यारे आओ"—

उसके बाद आदर,—"आधे आँचल पर तुम बैठो" उसके बाद भोग "नयनों की पूर्ण तृप्ति से देखूं।" तब सुखभोगकालीन पूर्वदुःख स्मृति—"कृपा हुई विधि की अब मेरे ऊपर। धन तुम जो हो, तुम्हें मिलाया उसने ही अब लाकर।"

सुख दो प्रकार का है सम्पूर्ण और असम्पूर्ण। असम्पूर्ण सुख यथा— "मणि भी नहिं तुम, माणिक नहिं तुम, हार बनाकर पहनूं

जो मैं।

बाद को सम्पूर्ण सुख—

"यदि विधि नारीरूप न देता
गुणागार तुमको मैं लेकर ।
घूम घूम कर जग में फिरती
मैं तव साथ सदा ही घर घर।"

सम्पूर्ण असह्य सुख का लक्षण है शारीरिक चंचलता, मानसिक अस्थिरता। इस सुख को मैं कहाँ रखूंगा, इसे लेकर मैं क्या करूंगा, मैं कहां जाऊं, इस सुख का भार लेकर मैं कहां घूमूं। इस सुख का भार लेकर मैं देश देश में घूमूं! यह सुख एक स्थान में नहीं समाता, जहाँ जहाँ संसार में स्थान है वहाँ वहाँ इस सुख को लेकर मैं जाऊंगा। इस जगत् को इस सुख से मैं भर दूंगा। संसार को इस सुख के सागर में डुबो दूंगा। मेरु से लेकर मेरु तक सुख की तरंगों से नचाऊंगा। आप ही आप डूबकर, उठकर, बहकर, हिलकर दौड़कर घूमूंगा। इस सुख में कमलाकान्त का अधिकार नहीं है—इस सुख में बंगाली का अधिकार नहीं है। सुखकी बात में ही बंगाली का अधिकार नहीं है। गोपियां का दुःख यह है कि, विधाता ने उनको नारी क्यों बना दिया—हम लोगों को दुःख यह है कि विधाता ने हमें नारी क्यों नहीं बनाया—तब उस दशा में यह सुख दिखाना नहीं पड़ता।

सुख की बातों में बंगाली का अधिकार नहीं है—किन्तु दुःख की बातों में है। कातरोक्ति कितनी गम्भीर, कितनी ही हृदय-विदारक क्यों न हो, वह बंगालियों की मर्मोक्ति है। और कातरोक्ति किस जगह नहीं है? नव प्रसूत पक्षियों के बच्चों से लेकर महादेव की शृङ्ग-ध्वनि तक सभी कातरोक्ति है। सम्पूर्ण सुख से जो सुखी है, वह भी सुख के समय पहले के दुःखों को याद करके कातरोक्ति करता है? नहीं तो सुख की सम्पूर्णता कहाँ है! सुख भी दु.खमय है—

"जब सुधि आती है तब प्यारे
वृन्दावन की ओर निहारूँ ।

केशों को बिखरा देती हूँ
बाँधू नहिं मैं तन मन वारूँ।"

यह बात सुख दुःख की सीमा रेखा है। नष्ट सुख की स्मृति जाग उठने से जिसे अब भी सुख का निदर्शन दिखाई पड़ता है, वह अब भी सुखी है—उसका सुख बिलकुल ही लुप्त नहीं हो गया है। उसके मित्र, उसके प्रिय, उसके वाञ्छित—चले गये हैं, किन्तु उसका वृन्दाबन है—इच्छा करने से वह उस सुखभूमि की तरफ देख सकती है। जिसका सुख चला गया है—सुख के निदर्शन चले गये हैं—बन्धु चले गये हैं, वृन्दाबन भी चला गया है, अब कोई चाहने का स्थान नहीं है—वही दुखी है, अनन्त दुःख से दुःखी है। विधवा युवती, मृत पति की यत्नरक्षित पादुका के खो जाने से जिस तरह दुःखी हो जाती है, उसी तरह के दुःख से वह दुखी है।

मेरे इस बङ्गदेश के सुख की स्मृति है, निदर्शन कहाँ है! देवपाल देव, लक्ष्मणसेन, जयदेव, श्रीहर्ष,—प्रयाग तक राज्य—भारत का अधीश्वर नाम, गौड़ी रीति, इन सबकी स्मृति है, किन्तु निदर्शन कहां है? सुख की याद आ गई, किन्तु मैं किस तरफ नजर उठाकर देखूं? वह गौड़ कहाँ है? वह तो केवल यवन-लाञ्छित भग्नावशेष है? आर्य राजधानी का चिह्न कहां है? आर्य का इतिहास कहाँ है? जीवन चरित कहाँ है? कीर्त्ति कहाँ है! कीर्त्तिस्तम्भ कहाँ है? समरक्षेत्र कहाँ है? सुख चला गया है—सुख-चिह्न गया है, बन्धु चला गया है, वृन्दाबन भी चला गया है—मैं किस तरफ देखूँ।

देखने के लिए एक श्मसान-भूमि है, नवद्वीप (नदिया)। वहां सत्रह यवनों ने बंगदेश को जीत लिया था। बंग माता की याद आ जाने से मैं उसी श्मसान-भूमि की तरफ ताकने लगता हूं। जब मैं देख पाता हूं कि उस छोटे से गाँव को घेरकर आज तक भी वह कलधौतवाहिनी गङ्गा तरतर रव कर रही है, तब मैं गङ्गा को पुकार कर पूछता हूं—तुम हो, वह राजलक्ष्मी कहाँ है? तुम जिसके पैरों को धोती थीं, वह राजमाता कहाँ है? तुम जिसको घेर घेरकर नाचती थीं, वह आनन्दरूपिणी कहाँ

हैं ? तुम जिसके लिए लंका, बाली, अरब, सुमात्रा से छाती पर धन ढो लाती थीं, वह धनेश्वरी कहाँ है ? तुम जिसके रूप की छाया पकड़कर रूपसी वेश धारणकर लेती थीं, वह अनन्त सौन्दर्यशालिनी कहां है ? तुम जिसके प्रसादी फूल लेकर, उस स्वच्छ हृदय पर माला पहनतीं थीं, वह पुष्पाभरणा कहां है ? उस रूप ऐश्वर्य को धोकर तुम कहाँ ले गयी हो ? विश्वासघातिनि ! तुम क्यों फिर श्रवणमधुर कल-कल तरतर शब्दों से मन को फुसला रही हो ? शायद तुम्हारे ही अतल गर्भ के भीतर यवनभय से डरी हुई वह लक्ष्मी डूब गयी हैं, शायद अब वे कुपुत्रों का मुख न देखेंगी, इसीलिए वे डूबी हुई हैं। मन ही मन मैं उसी दिन की कल्पना करके रोता हूं। मन ही मन देख पाता हूं, पैने बर्छों के फलकों को ऊपर उठाये, अश्वशब्द मात्र से ही नैश नीरवता को विन्धित करती हुई यवन सेना नवद्वीप में आरही है। काल पूरा हो गया है, यह देखकर नवद्वीप से बंगदेश की लक्ष्मी अन्तर्हित हो रही हैं। सहसा आकाश अन्धकार से घिर गया, राजप्रासाद की चूड़ाएं टूटकर गिरने लगीं। पथिक ने डरकर पथ छोड़ दिया, नागरी के अलंकार खिसककर गिर पड़े। कुञ्जवन में पक्षीगण नीरव हो गये। घरों में पाले हुये मोर कंठ से निकलने वाला केका रव (बोल) आधाही कर रह गया—फिर निकल न सका। दिन में आधीरात का दृश्य उपस्थित हो गया, सौदागरों की दूकानों की दीपमाला बुझ गयी—पूजागृह में समय पर शंख नहीं बजा। पण्डित ने अशुद्ध मंत्रों का उच्चारण किया, सिंहासन से शालग्राम मूर्ति लुढ़क पड़ी। युवकों का बल अकस्मात् क्षीण हो गया। युवती सहसा वैधव्य की शंका करके रो उठी, शिशु रोग के बिना ही माता की गोद में लेटकर मर गया। गाढ़-तर, गाढ़तर, अन्धकार से दिशाएं छा गयीं। आकाश, अटारियाँ, राज-धानी, राजमार्ग, देवमन्दिर, दूकानें उस अन्धकार से ढक गयीं— कुंज-तीर भूमि, नदी सैकत, नदी तरंगें उस अन्धकार में—अन्धकार, अन्धकार अन्धकार होकर छिप गयीं। मैं आँखों से सब देख रहा हूं, आकाश बादलों से ढँक रहा है, उन सीढियों से राजलक्ष्मी जल में उतर रही हैं। अन्धकार में निर्वाणोन्मुख आलोक बिन्दुवत् जल में धीरे धीरे वह तेजोराशि विलीन

होती जा रही है। यदि गङ्गा के अतल जल में डूब नहीं गयीं, तो मेरी वह देशलक्ष्मी कहाँ चली गयीं।

त्रयोदश संख्या

बिल्ली

मैं शयनगृह में चारपाई पर बैठकर हाथ में हुक्का लिए ऊंघ रहा था। कुछ टिमटिमाता हुआ छोटासा दीपक जल रहा है दीवालों पर चञ्चल छाया प्रेत की तरह नाच रही है। अभी रसोई तैयार नहीं है, इसलिए हाथ में हुक्का लिए आँखें बन्द करके मैं सोच रहा था कि यदि मैं नेपोलियन होता, तो वाटरलू की लड़ाई जीत सकता या नहीं! ऐसे ही समय में एक हल्की सी आवाज हुई "मेंऊँ।"

मैं गौर से ताकने लगा—एकाएक कुछ समझ न सका। पहले यह धारणा हुई कि वेलिंगटन एकाएक बिलाव बनकर मेरे पास अफ़ीम माँगने आया है। प्रथम उद्यम में पत्थर सरीखा कठोर बनकर यह कहने का विचार मैंने कर लिया कि ड्यूक महाशय को इसके पहले यथोचित पुरस्कार दिया जा चुका है, अब कोई अतिरिक्त पुरस्कार नहीं दिया जा सकता। अपरिमित लोभ अच्छा नहीं है। ड्यूक बोला—"मेंओं।"

तब आँखें ऊपर उठाकर अच्छी तरह देखने से मालूम हुआ कि यह वेलिंगटन नहीं है, यह एक छोटी सी बिल्ली है। प्रसन्न मेरे लिए जो गाय का दूध रख गयी थी, उसको वह पीकर एकदम खत्म कर चुकी है। मैं वाटरलू के क्षेत्र में व्यूह-रचना करने में व्यस्त हूँ, इतना देख नहीं सका। अब मार्जार सुन्दरी निर्जल दूध पीकर परितृप्त हो गयी हैं, और अपने मन का सुख इस जगत् में प्रकट करने के अभिप्राय से अति मृदु स्वर से कह रही हैं—"मेंओं।" मैं कह नहीं सकता, शायद उसमें कुछ व्यंग्य था, शायद बिल्ली मन ही मन हँस रही थी, और मेरी तरफ देखकर सोच रही थी—"ताल उलीच कै आन मरै कोऊ मछली खाय के पेट भरै।"

शायद—"मेंओं" शब्द के द्वारा उसने जरा मन समझने की इच्छा की थी। शायद बिल्ली के मन का यही भाव रहा हो—"तुम्हारा दूध तो मैं पीकर बैठी हुई हूं, अब तुम क्या कहते हो ?"

मैं क्या कहता ? मैं तो कुछ भी ठीक न कर सका। दूध मेरे बाप का भी नहीं है। दूध है मंगला का, उसको दुहा है प्रसन्न ने। इस कारण उस दूध पर मेरा जो अधिकार है, बिल्ली का भी वही है, इस लिए मैं क्रोध नहीं कर सकता। किन्तु चिरकाल से यह एक प्रथा चली आ रही है कि बिल्ली जब दूध पी जाती है तब उसको खदेड़कर मारने के लिए जाना पड़ता है। चिरकाल से जो प्रथा चली आ रही है उसको न मानकर मैं मनुष्य कुल में कुलाङ्गार रूप में परिचित हो जाऊँ यह भी तो वांछनीय नहीं है। कौन जाने, यह मार्जारी यदि स्वजाति मण्डली में कमलाकान्त को कापुरुष कहकर उपहास करने लगे ? इसलिए पुरुष की तरह आचरण करना ही उचित है। यह निश्चय करके सकातर चित्त से मैंने अपने हाथ का हुक्का नीचे रख दिया, और बहुत ढूंढने के बाद एक टूटी हुई लाठी लाकर गर्व के साथ उस मार्जारी की तरफ दौड़ पड़ा।

मार्जारी कमलाकान्त को पहचानती थी। लाठी देख कर उसने विशेष डरने का कोई लक्षण नहीं दिखाया। केवल मेरे मुँह की तरफ देखकर एक जम्हाई लेकर कुछ दूर हटकर बैठ गयी। बोली—"मेंओं" प्रश्न समझकर लाठी छोड़ कर मैंने फिर अपने बिछौने पर आकर हाथ में हुक्का ले लिया। तब मुझे दिव्य कर्ण प्राप्त हो गये और मार्जारी के सभी वक्तव्य मेरी समझ में आ गये।

मैं समझ गया कि बिल्ली कह रही है—"मारपीट क्यों कर रहे हो ? स्थिर होकर हाथ में हुक्का ले जरा विचार करके देखो तो ? इस संसार में खीर, मलाई, दूध, दही मछली, मांस सब तुम लोग खाओगे, हमको कुछ भी क्यों न मिलेगा ? तुम लोग मनुष्य हो, हम बिल्ली हैं। अन्तर ही क्या है ? तुम लोगों को भूख प्यास लगती है, हमें क्या नहीं लगती ? तुम लोग खाओ, हमें कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु हम ज्योंही खाने लगते हैं, तुम त्योंही किस शास्त्र के अनुसार हाथ में डंडा लेकर मारने दौड़ते

हो ? इस बात को मैं बड़ी खोज करके भी न समझ सकी। तुमलोग मुझ से कुछ उपदेश ग्रहण करो। विज्ञ चतुष्पद से शिक्षालाभ के अतिरिक्त तुम लोगों की ज्ञानोन्नतिका कोई उपाय मैं नहीं देखती। तुम लोगों के विद्यालयों को देखकर मुझे यही मालूम होता है, इतने दिनों के बाद तुम लोग मेरी बात समझ सके हो।

"देखो शय्याशायी मनुष्य ! धर्म क्या है ? परोपकार करना ही परम धर्म है। यह थोड़ा सा दूध पी लेने से मेरा परम उपकार हुआ है। तुमलोगों के दूध से यह उपकार सिद्ध हो गया, इस कारण तुम उस परम धर्म के फल भोगी हो—मैं चोरी ही करूँ या जो भी करूं, मैं तुम्हारे धर्म संचय का मूल कारण हूं। इस कारण मुझ पर प्रहार न कर तुम मेरी प्रशंसा करो मैं तुम्हारे धर्म में सहाय हूँ।

"देखो मैं चोर अवश्य हूँ, किन्तु मैं क्या अपनी खुशी से चोर बनी हूँ। खाना मिलते रहने से कौन चोर बनता है ? देखो, जो लोग बड़े बड़े साधु हैं, जो चोर का नाम सुनते ही सिहर उठते हैं, उनमें से बहुतेरे ही चोर से भी बड़े पतित हैं। उनको चोरी करने की जरूरत नहीं है, इसीलिए वे चोरी नहीं करते। किन्तु अपने पास आवश्यकता से अधिक धन रहते हुए भी वे चोर की तरफ सिर उठाकर नहीं ताकते, इसलिए चोर चोरी करता है। अधर्म चोर का नहीं है—चोर जो चोरी करता है, उससे जो अधर्म होता है उसका कारण धनी कृपण है। चोर दोषी तो अवश्य है किन्तु कृपण धनवान उसकी अपेक्षा सौगुना दोषी है। चोर को सजा दी जाती है, किन्तु जो कृपण चोरी का मूल है, उसको सजा क्यों नहीं मिलती ?

"देखो, मैं दीवालों पर "मेंऊं मेंऊं" कहकर घूमती रहती हूँ कोई मेरे सामने मछली का काँटा भी नहीं फेंक देता। मछली के कांटों को और थाली के भात को नाली में फेंक देते हैं जल में फेंक देते हैं, तो भी मुझे बुलाकर नहीं देते। तुम लोगों का पेट भरा रहता है, मेरे पेट की भूख का हाल कैसे जानोगे ? हाय ! दरिद्रों के लिए व्यथित होने से क्या तुम लोगों की कोई शान घटती है ? मेरी तरह दरिद्र की व्यथा से

व्यथित होने में लज्जा की बात है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जो कभी अंधे को एक मुट्ठी भीख नहीं देता, वह भी एक बड़ा राजा है। जब आफत में पड़कर रात को नहीं सोता तब सभी उसकी व्यथा से व्यथित होने को राजी हैं। किन्तु छोटे आदमी के दुःख से कातर! छिः कौन होगा?

"देखो, यदि अमुक शिरोमणि, या अमुक न्यायालंकार आकर तुम्हारा दूध पी जाते, तो तुम क्या लाठी लेकर उनको मारने के लिए दौड़ पड़ते? तब तुम दोनों हाथ जोड़कर कहते, क्या और थोड़ा दूध ला दूँ? तो फिर मेरे लिए लाठी क्यों? तुम कहोगे, वे बड़े पण्डित हैं, बड़े माननीय व्यक्ति हैं। पण्डित लोग माननीय हैं तो क्या इसीलिए उन्हें मुझसे अधिक भूख लगती है? यह बात तो नहीं है, तेल से तर सिर में तेल लगाने की मनुष्य जाति को बीमारी है—दरिद्र की भूख को कोई नहीं समझता। खाने को कहने से जो नाराज होता है, उसके लिए तुम लोग भोज का आयोजन करते हो—और जो भूख की तड़प से बिना बुलाए ही आकर तुम्हारा अन्न खा जाता है, उसको चोर कहकर तुम सजा देते हो—छिः छिः!

"देखो, हम लोगों की दशा देखो। देखो, दीवार दीवार पर, आँगन आँगन में, महल महल में, "मँओं, मँओं" आवाज करती हुई हम चारों तरफ नजर रखती हैं—कोई हमारे लिए मछली के काँटे तक नहीं फेंक देता। यदि कोई तुम्हारे यहाँ की प्यारी बिल्ली हो जाय, गृहमार्जार बनकर वृद्ध के पास युवती भार्या के सहोदर का, या मूर्ख धनवान के पास शतरंज के खिलाड़ी का स्थान अधिकार कर सके—तभी उसका पोषण होता है। उसकी पूँछ फूल जाती है, शरीर में रोएं उग आते हैं, और उसके रूप की अपूर्व छटा देखकर अनेक मार्जार कवि हो जाते हैं।

"और हम लोगों की दशा कैसी है देखो—आहार के अभाव से उदर कृश है, हड्डियाँ दिखाई पड़ती हैं, पूँछ झुकी रहती है, दांत बाहर निकल पड़े हैं—जीभ लटक रही है—बराबर आहाराभाव से हम पुकार रही हैं, मँओं! मँओं! खाना नहीं मिलता। हमारा काला चमड़ा देखकर घृणा मत करो। इस संसार में मछली काँटे पर हमारा कुछ भी अधिकार है। क्यों

खाने को दो, नहीं तो हम चोरी करेंगी। हमारा काला चमड़ा, सूखा चेहरा, क्षीण सकरुण "मेंओं मेंओं" आवाज सुनकर क्या तुम लोगों को दुःख नहीं होता। चोर के लिए सजा है, निर्दयता के लिए क्या सजा नहीं है। दरिद्र आहार जुटाने लगता है तो उसे दण्ड मिलता है, धनवान् की कृपणता का क्या कोई दण्ड नहीं है? तुम कमलाकान्त, दूरदर्शी हो, क्योंकि अफीमखोर हो, तुम क्या यह नहीं देख पाते कि धनी के ही दोष से दरिद्र चोर बनता है। पाँच सौ दरिद्रों को बञ्चित करके एक ही मनुष्य पाँच सौ मनुष्यों का खाद्य पदार्थ क्यों संग्रह करेगा? यदि उसने कर ही लिया तो उसके खाने से जो बच जाता है, उसे दरिद्र को क्यों नहीं दे देता। यदि वह नहीं देता, तो दरिद्र अवश्य ही उसके घर में चोरी करेगा, अनाहार से मर जाने के लिए कोई इस पृथ्वी में नहीं आया है।"

मुझसे और सहा नहीं गया, इसलिए मैंने कहा—"ठहरो! ठहरो! मार्जारपण्डिते! तुम्हारी ये बातें भारी सोशलिज्म की हैं। समाज-विशृंखला के मूल हैं! यदि अपनी शक्ति के अनुसार कोई मनुष्य धनसञ्चय न कर सके, अथवा धनसञ्चय करके चोर के आतंक से निर्विघ्न रूप से भोग न कर सके तो कोई धनसञ्चय के लिए प्रयत्न न करेगा। इससे समाज में धनवृद्धि न होगी?"

मार्जार ने कहा—"न हुई तो मेरा क्या? समाज की धनवृद्धि का अर्थ है धनवान की धनवृद्धि। धनवान की धनवृद्धि न होने से दरिद्रों की हानि क्या है।"

मैंने समझाकर कहा कि "सामाजिक धनवृद्धि के बिना समाज की उन्नति नहीं होती।"

बिल्ली ने क्रोधकरके कहा कि "मुझे यदि खाने को कुछ नहीं मिलता तो समाज की उन्नति को लेकर मैं क्या करूंगी!"

बिल्ली को समझाना कठिन हो गया। जो विचारक, या नैयायिक है, किसी दिन भी कोई उसको कुछ समझा नहीं सकता। यह मार्जार सुविचारक है, और अच्छी तार्किक भी है, इसलिये इसे न समझने का अधिकार है। इस कारण इस पर क्रोध न करके मैंने कहा—"समाज

की उन्नति की जरूरत दरिद्र को नहीं भी रह सकती है, किन्तु धनवानों को इसका विशेष प्रयोजन है, इस कारण चोर को सजा मिलनी चाहिये।"

मार्जारी महाशया ने कहा—"चोर को तुम फाँसी पर चढ़ा दो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु उसके साथ एक और नियम बना लो। जो विचारक चोर को सजा देंगे, उनको पहले तीन दिन उपवास करना पड़ेगा। इतना करने पर यदि उनको चोरी करके खाने की इच्छा न हो तो वे स्वच्छन्दता से चोर को फाँसी पर चढ़ा दें। तुमने मुझे मारने के लिये लाठी तान दी थी, तुम आज से तीन दिन तक उपवास करके देखो। इसी बीच यदि तुम नसीराम बाबू के भण्डारघर में न पकड़े जाओ तो मुझे लाठी से पीटना, मैं आपत्ति न करूंगी।"

समझदार लोगों का मत यही है कि, जब किसी विषय पर बहस में परास्त हो जाओ तब गम्भीर भाव से उपदेश प्रदान करना चाहिए। मैंने उसी प्रथा के अनुसार बिल्ली से कहा कि, "ये सब बातें अति नीति विरुद्ध हैं, इसका आन्दोलन करने से भी पाप होता है। तुम इन सब दुश्चिन्ताओं को छोड़कर धर्म का आचरण करने में मन लगाओ। यदि तुम चाहोगी तो मैं पढ़ने के लिए तुमको न्यूमैन और पार्कर के ग्रन्थ दे सकता हूँ। और कमलाकान्त के लेखों को पढ़ने से भी कुछ उपकार हो सकता है। और कुछ हो या न हो अफीम की असीम महिमा तुम समझ सकोगे। अब तुम अपने स्थान को चली जाओ। प्रसन्न ने कल कुछ छेना (फाड़े हुये दूध की मिठाई) देने को कहा है। जलपान करने के समय तुम आ जाना, हम दोनों मिलकर खायेंगे। आज अब किसी की हाँडी से मत खाना। वरन् भूख से यदि बिल्कुल ही अधीर हो जाओ, तो फिर मेरे पास आ जाना। सरसों के बराबर एक अफीम की गोली दे दूँगा।"

बिल्ली ने कहा—"अफीम की मुझे विशेष आवश्यकता नहीं है, किन्तु हाँड़ी टटोलकर खाने के बारे में भूख के अनुसार विचार किया जायगा।"

बिल्ली चली गयी। एक पतित आत्मा को अन्धकार से प्रकाश में ला सका हूँ, यह सोचकर कमलाकान्त को आनन्द हुआ।

श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती

चतुर्दश संख्या

ढेंकी

मैं इसी चिन्ता में पड़ा रहता हूं कि यदि संसार में ढेंकी न रहती तो मैं क्या खाता? क्या चिड़िया की तरह डाँड पर बैठ कर धान खाता? पूंछ कान हिलाती हुई गाय की तरह बखारी में मुंह डालता। अवश्य ही मैं यह न कर सकता—काले रंग का नंगा धड़ंगा युवक किसान आकर मेरी पसलियों पर लाठी का प्रहार करता, और मैं फोंसकारके लम्बी साँस लेता हुआ सींग पूंछ उठाये भाग खड़ा होता। आर्य सभ्यता की अनन्त महिमा से वह भय नहीं है-ढेंकी है जिससे धान चावल होता है। मैं इस परोपकार निरत ढेंकी को आर्य सभ्यता का एक विशेष फल मानता हूं। आर्य साहित्य, आर्य दर्शन मेरे मन में इसके सामने टिकने नहीं पाते। रामायण, कुमारसम्भव, पाणिनि, पतञ्जलि, कोई धान को चावल नहीं बना सकता। ढेंकी ही आर्य सभ्यता का मुख उज्ज्वल करने वाला पुत्र है—श्राद्ध का अधिकारी है। प्रतिदिन पिण्डदान कर रहा है। क्या केवल ढेंकीशाला में? समाज में, साहित्य में, धर्म-संस्कार में, राजसभा में—किस जगह, ढेंकी आर्य सभ्यता का मुख उज्ज्वल करने वाला पुत्र--श्राद्धका अधिकारी, प्रतिदिन पिण्डदान नहीं कर रही है। दुःख के बीच इसमें भी आर्य सभ्यता को मुक्ति नहीं मिली, आज भी भूत बनकर पड़ी हुई है। आशा है कि कोई ढेंकी शीघ्र ही उसका गया-श्राद्ध करेगी।

ढेंकी के इस अपरिमेय माहात्म्य का कारण अनुसन्धान करने के लिए मैं बहुत ही समुत्सुक हो गया। यह उन्नीसवीं शताब्दी है, वैज्ञानिक युग है—कार्य के कारण का अनुसन्धान अवश्य ही करना पड़ता है। ढेंकी को यह कार्य दक्षता कहाँ से मिली। परोपकार की यह बुद्धि कैसे हुई? यह Public spirit कहाँ से आगई। 'नावस्तुना वस्तुसिद्धिः!" कारण के बिना क्या यह पैदा होती है? पता लगाने के लिए मैं ढेंकीशाला में गया।

मैंने देखा कि ढेंकी गढ़े में गिर रही है। एक बूंद भी मदिरापान उसने नहीं किया है तथापि पुनः पुनः वह गढ़े में गिर रही है, उठ रही है, रुकावट नहीं है। मैं सोचने लगा, बारबार गढ़े में गिरना ही क्या इतने माहात्म्य का कारण है? ढेंकी गढ़े में गिरती है, इसीलिए क्या परोपकार में इतनी मति है? इतनी Public spirit है? मैंने सोचा—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। क्योंकि मेरे रामचन्द्र दादा भी दोनों वक्त गढ़े में गिरे रहते हैं, किन्तु कहाँ, उनमें तो जरा भी Public spirit नहीं है। गौरिडकालय के बाहर तो उनका परोपकार कुछ भी मैं नहीं देखता। इसके सिवा, मन की बात छिपा रखने से क्या होगा? मैं भी—मैं श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती स्वयं एक दिन गढ़े में गिर पड़ा था। द्राक्षा-रस का विकार विशेष सेवन करने से मेरा गढ़े में गिरना नहीं हुआ था—उसका अन्य कारण था। प्रसन्न ग्वालिनी, गोपांगना कुलकलंकिनी ने, एक दिन अपनी मंगला गाय को छोड़ दिया था। छोड़ देने के साथ ही मंगला पूंछ ऊपर उठाये और सींगों को नीचे झुकाकर दौड़ने लगी। क्या सोचकर मङ्गला दौड़ने लगी थी, यह तो मैं बता नहीं सकता। स्त्रीजाति और गोजाति के मन की बात कैसे बताऊं? किन्तु मैंने सोचा, उसकी दोनों सींगों का लक्ष्य मैं ही हूँ। तब मैं अपनी कमर को और भी दृढ़ता से बाँधकर दर्प के साथ बद्धपरिकर दशा में लम्बी सांस लेता हुआ भाग चला। मेरे पीछे वह घटवत् स्तनवाली राक्षसी रही। मैं भी जितना दौड़ने लगा, वह भी उसी तेजी से दौड़ने लगी। इसीलिए दौड़ की चोट से ठोकर खाकर, लुढ़कते लुढ़कते चन्द्र-सूर्य ग्रह-नक्षत्र की भांति लुढ़कते लुढ़कते विवरलोक की प्राप्ति हो गयी। "बिखरे फैले केशपाश, मुंह से न निकले सांस'—हाय! उस समय क्या मेरे हृदयाकाश में Public spirit रूप पूर्णचन्द्र का उदय हुआ था? नहीं हुआ था; ऐसी बात नहीं है। मैं इस निर्णय पर पहुँच गया था कि यदि यह वसुन्धरा गोशून्य हो जाय और नारियल, ताल, खजूर आदि वृक्षों से दूध निकलने लगे, तो उस दशा में इस दुग्धपोष्य बंगाली जाति का विशेष उपकार होगा। वे सींगों के भय से रहित होकर दूध पीते रहेंगे। उस दिन उस विवर प्राप्ति

के कारण मेरी परहित कामना इतनी प्रबल हो गयी थी कि प्रसन्न को मैंने दूसरे समय कहा था—"ऐ दधि-दुग्ध-क्षीर-नवनीत परिवेष्टिता गोप-कन्या! तुम अपनी गायों को बेचकर स्वयं उसकी भूसी खाती रहो, तुम स्वयं घट सरीखे स्तनवाली होकर बहुत से दूध पर जीवन धारण करने वालों का प्रतिपालन कर सकोगी, किसी को सींग से मत कोंचना।" प्रत्युत्तर में प्रसन्न ने हठात् हाथों में झाड़ू ले लिया था, इस कारण उस दिन मुझे परहित व्रत त्याग देना पड़ा था।

इस कारण परहितेच्छा, देशप्रेम, "साधारण आत्मा" अर्थात् Public spirit, विशेषतः कार्यदक्षता, ये सब गढ़े में गिर जाने से होते हैं या नहीं? यदि नहीं होते तो ढेंकी की यह कार्यदक्षता, यह उसका महाबल कहाँ से आ गया! मैं इस कूट तर्क की मीमांसा के लिए संदिग्ध चित्त से सोच रहा था, इसी समय मधुर कंठ से किसी ने कहा—"चक्रवर्ती जी, मुँह बाये तुम क्या सोच रहे हो? तुमने क्या कभी ढेंकी नहीं देखी है?"

मैंने नजर उठाकर देखा, तरङ्गिनी और मातङ्गिनी, दोनों बहनें ढेंकी चला रही हैं, इतनी देरतक मैंने उस तरफ ध्यान से देखा ही नहीं था। हाथी देखने को जाकर अन्धे ने केवल सूँड ही देखी थी, मैं भी ढेंकी की सूँड ही देख रहा था। पीछे दो स्त्रियों के दो लाल पैर ढेंकी की पीठ पर गिर रहे हैं, इसे देखकर भी मैंने नहीं देखा था। देखने के साथ ही मानो किसी ने मेरी आँखों की पट्टी खोल दी।

मुझे दिव्यज्ञान की प्राप्ति हो गयी—कार्यकारण-सम्बन्ध परम्परा मेरे नेत्रों में प्रखर सूर्य किरणों से चमक उठी। यही तो ढेंकी के माहात्म्य की मूल कारण है। यही है रमणी पादपद्म। पादपद्म धपाधप पीठपर गिर रहा है, और ढेंकी धान तोड़कर चावल बना रही है। ऊपर उठती है, नीचे गिरती है और ढक् ढक् कच् कच् शब्द करती है। कितना परोपकार कर रही है। हाय ढेंकी, उस पैर में क्या इतना गुण है? अपनी पीठ पर उसे पाकर तुम इन सात करोड़ बंगालियों को अन्न दे रही हो—इसके अतिरिक्त तुम देवता लोगों को भोग दे रही हो। आओ, स्त्रियों के श्रीचरण!

तुम भलीभाँति ढेंकी की पीठपर गिरो। मैं कृतज्ञतापाश में आबद्ध होकर तुमको—हाय! क्या करूंगा? काँसे का कड़ा पहना दूँ।

ऐ ढेंकियों! तुम लोगों की विद्या बुद्धि मैं समझ गया। जब तुम्हारी पीठपर रमणी पाद-पद्म उर्फ स्त्रियों की लात पड़ती है, तभी तुम धान फोड़ती हो नहीं तो केवल काठ—काठमय गढ़े में सूंड़ गिराकर, पूंछ ऊपर उठाये ढेंकीशाला में पड़ी रहती हो। तुम्हारे पास जो विद्या है वह है गढ़े में गिरना, तुम्हारा आनन्द है धान, तुमको पुरस्कार मिलता है वही लाल चरण—इसके सिवा मैं यह भी सुनता हूँ कि शायद तुम लोगों में एक विशेष गुण है? घर में रहकर शायद कभी कभी घड़ियाल बन जाती हो? और ढेंकी, तुमसे एक और बात मैं पूछ रहा हूं। सुनता हूं, कभी कभी तुम्हारा स्वर्ग में भी जाना होता है। सचमुच ही क्या वहाँ जाकर भी धान कूटने का काम करना पड़ता है? सभी देवता अमृत पान करते हैं, पारिजात लोकते है, अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते है, बादलों पर चढ़ते हैं, बिजली पकड़ते हैं, रति-रतिपति के साथ आँख-मिचौनी खेलते है, और तुम, सुनता हूं तबतक घेचर-घेचर शब्दों के साथ धान कूटती हो। धन्य है तुम्हारी सामर्थ्य!

ढेंकी ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल धान कूटने में ही लगी रही। क्रोध करके वहां से मैं चला गया—एकदम कमलाश्रम में। यह कमला-श्रम क्या है? स्वर्गीय नसीबाबू सम्प्रति धान कूटने चले गये हैं। निराश नाईन एक टूटी फूटी फूस की मड़ैया छोड़कर उत्तराधिकारी विरहित दशा में स्वर्ग लोक को चली गयी है—उसके उस घर की ऐसी अवस्था है कि किसी दूसरे ने फिर उसको पाने की इच्छा नहीं की—इस कारण मैंने उसमें कमलाश्रम खोल दिया है, वह केवल कमलाकान्त का आश्रम नहीं है, साक्षात् कमला का आश्रम है। वहां चारपाई पर बैठकर मैंने अफीम चढ़ा ली। तब आँखें बन्द हो चलीं, ज्ञाननेत्र खुल गये। मैंने देखा कि, यह संसार केवल ढेंकीशाला है। बड़ी बड़ी इमारतें, बैठकखानें, राज भवन, सभी ढेंकीशालाएं हैं। उनमें बड़ी बड़ी ढेंकियाँ गढ़े में नाक

डालकर खड़ी हैं। कहीं जमींदार-रूप ढेंकी प्रजाजनों के हृतपिण्डों को गढ़े में पीसकर नया लगानरूप चावल निकालकर, सुख से पकाते हुए, अन्न-का भोजन कर रहे है, कहीं कानून बनाने वाले-ढेंकी रूप में, मिनिट रिपोर्टों के ढेरों को गढ़ में पीस-कूटकर, निकाल रहे हैं—दरिद्रता, कारावास—धनिकों का धनान्त, भले आदमियों का देहान्त। बाबू-ढेंकी बोतल गढ़े में पितृधन पीसकर निकाल रहे हैं—प्लीहा, यकृत्, उनकी गृहिणी ढेंकी बाजार-खर्च गढ़े में पीसकर निकाल रही है—अनाहार। सर्वथा भयानक मैंने देखा लेखक-ढेंकियों को, साक्षात् माँ सरस्वती का मुण्ड छापे के गढ़े में पीसकर निकाल रहे हैं—स्कूल बुक !

देखते देखते मैंने देख लिया कि, मैं भी एक बहुत बड़ी ढेंकी हूं, कम-लाश्रम में शरीर लम्बा लम्बा फैलाकर मैं पड़ा हुआ हूं। नशे के गढ़े में मनो दुःखधान्य पीसकर पोथा चावल निकाल रहा हूं। मन ही मन अहं-कार उत्पन्न हो गया, ऐसा चावल तो किसी के गढ़े से निकल नहीं रहा है। तब यह इच्छा हुई कि, यह चावल मनुष्य लोक के लायक नहीं है, मैं स्वर्ग में जाकर धान कूटूंगा। तब मैं स्वर्ग में चला गया—"अश्व-मनोरथ' से स्वर्ग जाकर देवराज को प्रणाम करके मैंने कहा—"हे देवेन्द्र, मैं श्री कमलाकान्त ढेंकी हूँ—स्वर्ग में धान कूटूंगा।"

देवेन्द्र ने कहा—इसमें आपत्ति क्या है ? क्या पुरस्कार चाहिये ?

मैं—उर्वशी, मेनका, रम्भा, (*)

देवराज—उर्वशी मेनका तुम नहीं पाओगे। और जो कुछ तुमने माँगा, वह (केला) तो तुम मर्त्यलोक में भी पाते हो—आठ आठ के हिसाब से।

मैं हूँ दुमुँख (मुंहफट)। मैंने कहा—"क्या महाराज, अष्टरम्भा ?* मनुष्य लोक में आजकल क्या उन्हें कोई पा सकता है ? उनपर तो आज-कल देवता लोगों का ही एक मात्र अधिकार है !"

(*) रंभा शब्द के दो अर्थ हैं—रंभा नाम की अप्सरा और केले का फल

* बंगला में अष्टरंभा एक मुहावरा है "अंगूठा दिखाना।"

सन्तुष्ट होकर देवराज ने मुझे बख्शीश देने का हुक्म दिया। एक सेर अमृत और एक घंटे के लिये उर्वशी का संगीत। चैतन्य होने पर मैंने देखा कि पास ही एक सेर दूध रखा हुआ है, और प्रसन्न खड़ी खड़ी चिल्ला रही है—नशाखोर "बदमाश" "पेटू" इत्यादि इत्यादि। मैंने उर्वशी से कहा—"बाई जी, एक घंटा बीत गया—अब तुम बन्द करो।"

कमलाकान्त का पत्र

प्रथम संख्या

१—क्या लिखूं ?

पूज्यपाद,

श्री युत् बङ्गदर्शन(*) सम्पादक महाशय के

श्री चरणकमलों में—

मेरा नाम है श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती, मूल निवास श्री श्री नशीधाम है। मैं आपको प्रणाम करता हूं। आपके साथ मेरा व्यक्तिगत रूप से कोई परिचय नहीं है, किन्तु मैं देख रहा हूं कि आपने अपने गुणों से मेरा विशेष परिचय प्राप्त कर लिया है। भीष्म देव खुशनवीस धोखेबाज आदमी है। मैंने पहले ही बता दिया था—मैंने अपना पोथा उनके पास सुरक्षित रखकर तीर्थ दर्शन करने के लिए यात्रा की थी। उसी अवसर से लाभ उठाकर उसने उसे आपके हाथ बेच दिया। विक्रय करने की बात आपने स्वीकार नहीं की है, किन्तु मैं जानता हूं; भीष्मदेव ठाकुर बिना मूल्य शालग्राम पर तुलसी दल भी नहीं चढ़ाते, वे बिना मूल्य आपको श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती रचित पोथा देवेंगे, ऐसी सम्भावना अति विरल है। इतने दिनों तक मैं इस धोखाधड़ी की बात नहीं जानता था, दैव संयोग से एक जोड़ा जूता खरीदने पर मुझे इसका पता चल गया। एक छपे हुये

(*) कमलाकान्त का दफ्तर "बंग दर्शन" में पहले पहल प्रकाशित हुआ। उस समय बंग दर्शन के सम्पादक बङ्किम बाबू थे।

कागज में जूते बंधे हुए थे। यह देखकर मैं सोच रहा था कि किसका ऐसा सौभाग्य है कि उसकी रचना श्री कमलाकान्त शर्मा के चरण युगल के व्यवहार्य पादुकाद्वय को मण्डन कर रही है। मैंने समझ लिया कि सार्थक है उस मनुष्य का लेखनी धारण! सार्थक है उसका आधी रात तक तेल जलाना! उसकी रचना किसी मूर्ख के द्वारा पठित न होकर साधु जन के चरणों के साथ किसी प्रकार के सम्बन्ध से युक्त हो गयी है, यह तो उस बङ्गीय लेखक के लिए सौभाग्य की बात है। यह सोचकर कौतूहल-वश मैंने उसे पढ़ा और देखा कि वह कागज क्या है। मैंने देखा कि ऊपर लिखा हुआ है "बङ्ग दर्शन।" भीतर लिखा हुआ है, "कमलाकान्त का पोथा।" तब मैं समझ गया कि यह मेरे ही पूर्व जन्मार्जित सुकृत का फल है।

मेरे मन में और भी जरा कौतूहल उत्पन्न हो गया। यह जानने की इच्छा हुई कि बङ्गदर्शन क्या है? अपने एक मित्र से मैंने पूछा—'महाशय, यह बङ्गदर्शन क्या है? क्या आप बता सकते हैं!' वे बड़ी देर तक सोचते रहे। बहुत देर के बाद सिर उठाकर उन्होंने कहा—"जान पड़ता है, बङ्ग देश का दर्शन करना ही बङ्ग दर्शन है!" मैंने उनके पाण्डित्य की बड़ी प्रशंसा की, किन्तु अन्त में एक दूसरे मित्र से भी वही प्रश्न करना पड़ा। दूसरे मित्र ने यह निष्कर्ष निकाला कि श के ऊपर जो रेफ लगा हुआ है, वह शायद मुद्रक की भूल है। शब्द है "बंग दशन" अर्थात् बंगाल का दाँत। मैंने उनको संस्कृत पाठशाला खोलने का परामर्श देकर एक दूसरे व्यक्ति से पूछा। उन्होंने बङ्ग शब्द में पूर्व बंगाल व्याख्या करके कहा, इस का अर्थ है पूर्वी बंगाल दर्शन करने की विधि, अर्थात्—A Guide to Eastern Bengal। इस प्रकार बहुत प्रकार से अनुसन्धान करके मैं जान सका कि बङ्ग दर्शन है एक मासिक पत्र और उसमें कमलाकान्त का मासिक पिण्डदान होता रहता है। अब मैं फिर यही सुन रहा हूं कि कोई धनुर्धर उस पोथे के लेखों को अपनी रचना कहकर प्रचारित कर रहे हैं। और भी न जाने क्या क्या होगा!

अतः हे बङ्गदर्शन-सम्पादक महाशय! आप यह जान लीजिये कि

मैं कमलाकान्त शर्मा सशरीर इस जगत् में मौजूद हूं, और आपलोगों की विशेष आपत्ति रहने पर भी और भी कुछ दिन यहाँ रहूंगा, ऐसी ही इच्छा रखता हूं।

अब आप यह जान लीजिये कि किस लिए आज मैं आपको पत्र लिख रहा हूं। आप देख रहे हैं कि ऊपर मैंने "श्री श्री नसीधाम" लिख दिया है —अर्थात् मेरे नसी बाबू श्री श्री ईश्वर में विलीन हो गये हैं। मुझे आशा है कि वे सब के एकमात्र आश्रय-श्रीपादपद्म में पहुँच गये हैं, किन्तु वास्तव में उनकी गति किस राह में हुई है, उसका निश्चित समाचार मैं नहीं जानता। मैं केवल यही जानता हूं कि इस लोक में वे नहीं है। इसलिए मेरा भी आश्रय नहीं है! अफीम की मात्रा में कुछ कमी हो गयी है। उसकी कुछ व्यवस्था क्या आप कर सकते हैं? मेरे पोथे के लिए आपने खुशनवीस महाशय को क्या दिया था, मैं कह नहीं सकता, किन्तु मुझे आध पाव अफीम भेज देने से ही (मेरी मात्रा कुछ अधिक है) मैं एक एक निबन्ध आपके पास भेज सकूंगा। आपका कल्याण हो। आप इसमें द्विरुक्ति न करेंगे। किन्तु आपके साथ कोई पक्का बन्दोबस्त करने के पहले मैं दो चार बातें आपसे पूछ लेना चाहता हूं। इस कमलाकान्त मशीन में फरमाइश के मुताबिक सब प्रकार की रचनाएं तैयार होती हैं। आपको क्या चाहिये? नाटक नावेल चाहिये, या पालिटिक्स की जरूरत है? मैं ऐतिहासिक गवेषणा आपके पास भेजूं या संक्षिप्त समालोचना लिखूं? विज्ञान शास्त्र में आपका अनुराग है, या भौगोलिक तत्व रस के आप सुरसिक है? असल बात यह है कि कोई गुरुविषय आपके पास भेजूं, या लघु विषय? मेरी रचनाओं का मूल्य गज की नाप की दर से दीजियेगा या मन के भाव से? यदि गुरु विषय में ही आपकी अभिरुचि हो तो बताइये, उसमें किस प्रकार के अलङ्कार का समावेश करना होगा। आप कोटेशन (उद्धरण) पसन्द करते हैं या फुटनोटों पर आपका अनुराग है? यदि कोटेशन या फुटनोट की जरूरत हो तो यह भी लिखियेगा कि, वह किस भाषा से दूंगा। यूरोप और आस्ट्रिया की सभी भाषाओं से मैंने कोटेशन संग्रह किये हैं, अफ्रीका और अमेरिका की कुछ भाषाओं का पता

मुझे नहीं चला है ! किन्तु उन सब भाषाओं के कोटेशन मैं बहुत शीघ्र तैयार करूँगा, आप चिन्तित न हों।

यदि गम्भीर विषय की रचना आपको नितान्त मनोनीत हो जाय, तो यह भी बता दीजियेगा कि किस प्रकार के गम्भीर विषय में आपकी आकांक्षा रहती है। मैं स्वयं उस तरफ कुछ नहीं कर सकता, मेरा एक बड़ा सहायक मिल गया है। भीष्मदेव खुशनवीस महाशय के पुत्र की, जिन्होंने यूटिलिटी* शब्द की आश्चर्यजनक व्याख्या की थी, याद आपको अवश्य होगी। वे अब विद्याध्ययन कर चुके हैं। एम.ए. पास करके उन्होंने विद्या की फाँसी गले में डाल ली है। गम्भीर-विषयों पर उनका पूरा अधिकार है। क्या स्कूल की पाठ्य पुस्तक चाहिए ? वे वर्णपरिचय से लेकर रोमदेश के इतिहास तक सभी कुछ लिख सकते हैं। नेचरल हिस्ट्री को उन्होंने सम्पूर्ण रट रखा है, पुराने पेनी मैगजीन से अनेक निबंधों का अनुवाद कर रखा है और गोल्डस्मिथ रचित 'एनिमेटेड नेचर' का सारांश संकलन कर रखा है। उन सबकी जरूरत है क्या ? इन में सबसे गुरु विषय गणित और ज्योमिट्री है। उसमें भी वे साहसशून्य नहीं हैं। ज्यामिति और त्रिकोणमिति चूल्हे में जाय, चतुष्कोणमिति में भी उनका अधिकार है—दैवविद्यावल से उन्होंने अपने पैतृक चतुष्कोण पोखरे को भी नाप लिया है, यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं कि सुनकर लोगों ने धन्य धन्य कहा था। उनकी ऐतिहासिक कीर्ति की बात क्या कहूं। उन्होंने चित्तौर के राजा अलफ्रेड दि ग्रेट का एक जीवनचरित्र दस पन्द्रह पृष्ठों में लिख रखा है और बंगला साहित्य समालोचन विषयक एक ग्रन्थ महाभारत से संकलित किया है। उसमें कामत हर्बर्ट स्पेंसर के मत का खण्डन है और डारविन के इस कथन का भी कि माध्याकर्षण के बल से यह पृथ्वी स्थिर है, उन्होंने प्रतिवाद किया है। उस ग्रन्थ में मालती माधव से चार पाँच श्लोक उद्धृत किये गये हैं। इस कारण मोटे तौर से यह एक बड़े प्रकार का गुरु विषयक ग्रन्थ हो उठा है। आशा है, समालोचना काल में आप कहेंगे कि बंगला भाषा में यह अद्वितीय है।

* यू टिल इट—आई।

मुझे आशा है, गुरु विषय को छोड़कर लघु विषयों में आपकी अभि॰रुचि न होगी। कारण उन सबमें एक असुविधा रहती है। खुशनवीस के पुत्र ने एक नाटक की सामग्री निश्चित ही तैयार कर रक्खी है नायिका का नाम चन्द्रकला या शशिरम्भा रखने का उन्होंने निश्चय कर लिया है—उनके पिता है बीजापुर के राजाभीम सिंह और नायक कोई दूसरे सिंह हैं, और उन्होंने यह ठीकठाक कर लिया है कि अन्तिम अंक में शशिरम्भा नायक की छाती में छुरा भोंक कर स्वयं "हा हतोस्मि" कहकर जल मरेंगी, किन्तु नाटक का आद्य और मध्यभाग कैसा होगा और अन्यान्य "नाटको॰ल्लिखित व्यक्तिगण" कैसे होंगे, इसका कुछ भी निश्चय वे नहीं कर सके है। अन्तिम अंक में छुरा भोंकने का जो दृश्य है उसका कुछ उन्होंने लिख रक्खा है और मैं शपथपूर्वक आपसे कह सकता हूं कि जिन बीस पंक्तियों को उन्होंने लिख रक्खा है, उनमें आठ "हा सखि" और तेरह "क्या हुआ!" के समावेश कर रक्खे हैं। अन्त में एक गीत भी उन्होंने दिया है—नायिका हाथ में छुरी लेकर गा रही है, किन्तु दुःख की बात यह है कि नाटक के अन्यान्य अंश कुछ भी लिखे नहीं गये हैं।

यदि नावेल में आपकी आकाँक्षा हो तो उस हालत में भी हमलोग अर्थात् खुशनवीस कम्पनी के लोग अप्रस्तुत नहीं हैं। हम उत्तम नावेल लिख सकते हैं। किन्तु बात यह है कि हम चाहते थे कि इधर उधर के फ़िजूल नावेल न लिखकर डनक्यिकसोट या जिलब्ला का परिशिष्ट लिखें। सम्प्रति मैं काले के एसे का परिशिष्ट लिख देने से क्या आप का काम हो सकता है। वह भी नावेल ही है।

यदि आप काव्य चाहते हों तो मित्राक्षर चाहिये या अमित्राक्षर यह विशेष रूपसे बताइयेगा। मित्राक्षर लिखना हमें नहीं आता, हम 'पयार' नहीं मिला सकते। किन्तु अमित्राक्षर आप जितना कहेंगे उतना २ हम सकेंगे। सम्प्रति खुशनवीस पुत्र ने जीमूतनाद वध नामक एक काव्य का प्रथम खण्ड लिख रक्खा है, यह प्रायः मेघनादवध के तुल्य है। —केवल चार नामों का अन्तर है। आपको चाहिये?

और यदि लघुगुरु सबको छोड़कर शुद्ध कमलाकान्त प्रणाली में

आप की रुचि हो तो वह भी कहिये, मेरी रचित धूल राख जो भी सामग्री है, वही भेज दूँ। इस बात को आप याद रक्खें कि उसके बदले में मैं अफीम लूंगा। वजन तिल रत्ती के तौल से समझ लूंगा—एक तिल भी न छोड़ूंगा।

आप क्या राजी हैं ? आप राजी हों या न हों, मैं राजी हूं।

द्वितीय संख्या

पालिटिक्स (राजनीति)

श्रीचरणों में निवेदन है कि अफीम मुझे मिल गयी। बहुत अफीम आपने भेज दी है—श्रीचरणकमलों में प्रार्थना है। आपके श्रीचरणकमल युगल में निवेदन है कि कुछ अफीम और भेज दीजियेगा।

किन्तु श्रीचरणकमल युगल की ओर से कमलाकान्त के प्रति ऐसी कठिन आज्ञा किस कारण हुई है, यह मैं समझ न सका। आपने लिखा है कि इस समय नौ नम्बर के कानून से अन्य स्थानों में पालिटिक्स कुछ कम प्रभावकारी होगा—तुम कुछ पालिटिक्स पर बोलते तो अच्छा होता, क्यों महाशय ? मैंने क्या अपराध किया है कि पालिटिक्स सब्जेक्ट रूपी झाँवे की ईंट से सिर फोड़ूंगा ? कमलाकान्त क्षुद्र जीव ब्राह्मण है, उसको पालिटिक्स लिखने का आदेश आपने क्यों दिया ? कमलाकान्त स्वार्थी नहीं है—अफीम के सिवा जगत् में मेरा दूसरा कोई स्वार्थ नहीं है, मेरे ऊपर पोलिटिकल दबाव क्यों ? मैं राजा हूं या खुशामदी हूं, या ठग धोखेबाज हूं, या भिखारी हूं, या सम्पादक हूं, जो मुझसे आप पालिटिक्स लिखने को कहते हैं ? आपने मेरा पोथा पढ़ डाला है। कहाँ आपको मेरी ऐसी स्थूल बुद्धि का चिह्न मिला है जो मुझसे पालिटिक्स लिखने को कहते हैं ? अफीम के लिए मैंने आपकी खुशामद तो जरूर की, किन्तु इसीलिए मैं ऐसा स्वार्थी चाटुकार नहीं हो गया हूं कि पालिटिक्स लिखूं। आपकी सम्पादकता को धिक्कार है। धिक्कार है आपके अफीमदान को। आप आज भी समझ नहीं सके हैं कि कमलाकान्त शर्मा ऊंचे विचार के

कवि हैं, कमलाकान्त क्षुद्रजीवी पालिटिशियन नहीं हैं।

आपका यह आदेश मिलने पर दुःखितचित्त होकर, एक गिरे हुए वृक्ष के तने पर बैठा हुआ मैं बङ्गदर्शन-सम्पादक की बुद्धि भ्रष्ट हो जाने क विषय में सोच रहा था! क्या करूं। एक तोला अफीम गले के नीचे किसी प्रकार भेज दी, सामने शिबू तेली का मकान है—मकान के आँगन में दो तीन बैल बँधे हुये थे—मिट्टी में गाड़ी हुई नाँद में तेली की स्त्री के हाथ से खली मिले हुये पयाल चूर्ण के कौर लेकर आँखें मूंदे सुख के आवेश से ये बैल खा रहे थे। मैं कुछ कुछ स्थिर चित्त हो गया—यहाँ तो पालिटिक्स नहीं है। इस नाँद में से बैल पालिटिक्सविकार-शून्य अकृत्रिम सुख पा रहे हैं। देखकर मैं कुछ तृप्त हो गया, तब अफीम की कृपा से चित्त में प्रसन्नता धारण करके मैं लोगों की इस पालिटिक्स प्रियता के सम्बन्ध में विचार करने लगा। तब मुझे विद्यासुन्दर नाटक का एक गाना याद पड़ गया।

गूंगा चाहे मुंह से बोलूं,
लँगड़ा चाहे दौड़ लगाऊं
तुम्हें चाह विद्या पाने की,
इच्छा ही तो है इत्यादि।

हम लोगों की इच्छा है पालिटिक्स—प्रति सप्ताह रोज रोज पालिटिक्स, किन्तु गूंगे की वाक्चातुरी की कामना की तरह, लँगड़े के द्रुत गमन की आकांक्षा की तरह, अन्धे की चित्र दर्शन लालसा की तरह, हिन्दू विधवा की स्वामी के प्रणय की आकांक्षा की तरह, मेरे मन की आदरणीय गृहिणी की प्यारी साध की तरह यह हास्यास्पद है, फलप्रद नहीं है। पालिटिक्स वाले भाइयो, मैं कमलाकान्त चक्रवर्ती तुम लोगों से हित की बातें कह रहा हूं, प्यादे के ससुराल हो सकती है, लेकिन केवल सत्रह अश्वारोहियों ने जिस जाति को जीत लिया था, उन लोगों का पालिटिक्स नहीं है। "जय राधेकृष्ण! भीख दो माँ!" यही है उन लोगों का पालिटिक्स! इसके सिवा और पालिटिक्स जिस वृक्ष में फलता है, उसका बीज इस देश की मिट्टी में लगने की सम्भावना नहीं है।

मैं इस प्रकार सोच रहा था, इसी अवसर पर मैंने देखा कि शिबू तेली का पौत्र दस वर्ष का बालक, एक काँसे की थाली में भात लाकर आँगन में बैठ गया और खाने लगा। दूर से एक श्वेत-कृष्ण अर्थात् चितकबरे कुत्ते ने उसे देख लिया। देख कर वह खड़ा हो गया, ध्यान से देखने लगा दुःखित मनसे उसने जीभ निकाल ली। अमल धवल अन्नराशि काँसे की थाली में फूलों के ढेर की तरह विराज रही है। उस कुत्ते का पेट मैंने देखा, एक दम धँस गया था। कुत्ता ताकता ताकता, खड़ा खड़ा, एक बार अंगड़ाई लेकर जम्हाई लेने लगा। उसके बाद सोच विचार कर धीरे धीरे एक एक पग आगे बढ़ने लगा। तेली के पौत्र के अन्नपरिपूरित मुखमण्डल पर वह एक एक बार तिरछी नजरों से कटाक्ष कर देता था, फिर एक कदम आगे बढ़ जाता था। अकस्मात् अफीम की कृपा से मुझे दिव्य नेत्र मिल गये—मैंने देखा, यही तो पालिटिक्स है—यही कुत्ता तो पालिटिशियन है! तब ध्यान के साथ मैं देखने लगा कि कुत्ते ने पक्की पोलिटिकल चाल चलना शुरू कर दिया। कुत्ते ने देखा, तेली का लड़का कुछ नहीं बोलता - बहुत ही सुशील बालक है। कुत्ता उसके पास जाकर पंजे पसार कर बैठ गया। धीरे धीरे पूंछ हिलाने लगा, और तेली के पौत्र के मुंह की तरफ देखकर मुंह खोल खोलकर हाँफने लगा। उसका क्षीण कलेवर, पतला पेट, कातर दृष्टि और थर थर विश्वास देखकर तेली के लड़के को दया आ गई,—उसका पोलिटिकल एजिटेशन सफल हो गया—तेली के लड़के ने मछली का एक काँटा अच्छी तरह चूस कर कुत्ते की तरफ फेंक दिया। कुत्ता आग्रह के साथ आनन्द से उन्मत्त होकर उसे चबाने लगा, चाटने लगा, निगलने लगा और हजम करने में प्रवृत्त हो गया। आनन्द से उसकी दोनों आँखें बन्द हो चलीं।

जब उस मत्स्यकण्टक के सम्बन्ध में यह सुमहत् कार्य भलीभाँति सम्पन्न हो गया, तब उस सुचतुर पालिटीशियन के मन में विचार आया कि एक और काँटा मिल जाता तो अच्छा होता। ऐसा सोचकर वह पालिटिशियन फिर बालक के मुंह की तरफ ताकने लगा। उसने देखा, बालक अपनी रुचि के अनुसार गुड़ इमली में मिलाकर घोर रव से भोजन

कर रहा है—कुत्ते की तरफ अब वह देखता ही नहीं। तब कुत्ते ने एक Cold move का अवलम्बन किया। वह जन्मजात पालिटिशियन था—ऐसा वह क्यों न करता, वह राजनीतिविद्—साहस पर भरोसा करके कुछ और आगे बढ़कर बैठ गया। फिर एक बार उसने जम्हाई ली। इससे भी तेली के लड़के ने नजर उठाकर नहीं देखा। इसके पश्चात कुत्ता धीरे धीरे गुर्राने लगा। सम्भवतः वह यही कह रहा था—"हे राजाधिराज तेली पुत्र! इस दरिद्र का पेट भरा नहीं है।" तब तेली के लड़के ने उसकी तरफ नजर उठाकर देखा। अब मछली नहीं थी, एक मुट्ठी भात कुत्ते के सामने उसने फेंक दिया। इन्द्रदेव जिस सुख से नन्दनकानन में बैठकर सुधापान करते हैं, कार्डिनेल के उल्सी या कार्डिनेल जेरेज ने जिस सुख से कार्डिनेल की टोपी पहन ली थी, कुत्ता उसी सुख से उस अन्नमुष्टि को भक्षण करने लगा। ऐसे ही समय में तेली की गृहिणी घर से बाहर निकल आयी। लड़के के पास बैठकर एक कुत्ते को जल्दी जल्दी भात खाते देखकर तेली-पत्नी ने रोषोद्दीप्त लोचनों से, एक ईंट का टुकड़ा लेकर कुत्ते के मारा तब वह राजनीतिज्ञ आहत होकर अपनी पूंछ समेटकर बहुविधि राग-रागिनी अलापता हुआ द्रुत वेग से भाग चला।

इसी अवसर पर एक और घटना दृष्टिगोचर हुई। जब तक क्षीण-जीवी कुत्ता उदर पूर्ति के निमित्त बहुत प्रकार के कौशल कर रहा था, तब तक एक वृहदाकार साँड़ आकर तेली के बैल की भूसा खली से परिपूर्ण उस नाँद में मुंह डालकर खाना खा रहा था। बैल ने साँड़ के भीषण सींगों और मोटे शरीर को देखकर मुंह हटा लिया था और चुपचाप खड़ा होकर कातर नेत्रों से उसकी निपुणता देख रहा था। कुत्ते को भगाकर तेली गृहिणी ने यह दस्युता देख ली, और एक बाँस की लाठी लेकर साँड़ को तगार में जा। का परामर्श देते देते उसकी तरफ दौड़ पड़ी।

किन्तु तगार में जाने की बात तो दूर रही, वह साँड़ एक कदम भी नहीं हटा और तेली गृहिणी जब निकटवर्तिनी हुई तो अपने वृहत श्रृङ्गों को हिलाकर उसकी छाती में सींग की नोक घुसने की सम्भावना उसने व्यक्त कर दी। तेलिन तब रण से भागकर घर में घुस गयी, साँड़

अवकाश मिल जाने से नाँद को चाट-पोंछकर झूमता हुआ अपने स्थान को चला गया।

मैंने सोचा कि यह भी पालिटिक्स है। दो प्रकार के पालिटिक्स मैंने देखे, एक कुत्ता जाति का, और दूसरा साँड़ जाति का। बिस्मार्क और गर्शाकाफ इस साँड़ की श्रेणी के पालिटिशियन हैं। और उल्सी से लेकर हमारे परमात्मीय राजा मोचीराम राय बहादुर तक बहुतेरे इस कुत्ता जाति के पालिटिशियन हैं।

तृतीय संख्या

बंगाली का मनुष्यत्व

महाशय! आपको मैं पत्र क्या लिखूं—लिखने के अनेक शत्रु हैं मैं इस समय जिस कुटिया में रहता हूं, दुर्भाग्यवश उसके आस पास दो तीन फूल के पौधे मैंने रोप दिये हैं। मन में यही विचार किया था कि कमलाकान्त का कोई नहीं है—ये ही फूल मेरे सखा सखी की जगह लेंगे। खिल उठने के लिये इनकी खुशामद न करनी पड़ेगी। रूप में बिखेरने नहीं पड़ेंगे, मन को खुश करने वाली बातें न कहनी पड़ेंगी, अपने ही सुख से ये खिलेंगे। उनमें हंसी है, रुलाई नहीं है, उनमें आमोद है, क्रोध नहीं है। मैंने सोचा, यदि प्रसन्न ग्वालिन ने मुझे त्याग दिया है, तो इस फूल के साथ मैं प्रेम करूंगा।

यही हुआ, फूल खिल गये—तारे हंसने लगे। मैंने सोचा—बापरे!—कुछ सोचते न सोचते ही खिले हुये फूलों को देखकर भौंरों के दल—लाखों लाखों झुण्ड के झुण्ड भौंरे, बर्रे, मधुमक्खियाँ, बहुत प्रकार के रस के भूखे रसिकों के दल मेरे दरवाजे पर उपस्थित हो गये। तब गुन् गुन् भन् भन् झन् झन् धन् धन् करते हुये उन्होंने हाड़ जलाना शुरू कर दिया। उन लोगों को बहुत समझाकर मैंने कहा, हे महाशय गण! यह सभा नहीं है, समाज नहीं है; एसोसिएशन, लीग, सोसाइटी, क्लब वगैरह कुछ

भी नहीं है—यह कमलाकान्त की पर्णकुटी मात्र है। आप लोगों को घन् घन् भन् भन् करना हो तो अन्यत्र चले जाइये—दूसरे मैं कोई भी रिजो-ल्यूशन (प्रस्ताव) करने को प्रस्तुत नहीं हूं, आप लोग अन्य स्थान को चले जाइये। गुन गुन करने वालों का दल इसके लिये किसी तरह सह-मत नहीं है—वरन् फूलों के पौधों को छोड़कर उन लोगों ने मेरी कुटिया के भीतर हल्ला बोल दिया है—(अफीम समाप्त हो गयी है) ऐसे ही समय में एक काला भौंरा—एकदम काले रंग का असल—झटपट कमरे में उड़कर चला आया और कानों के पास भन् भन् करने लगा—क्या लिखूं महाशय ?

भ्रमर भैया निश्चित रूप से यही समझते है कि वे बहुत ही सुर-सिक हैं—बहुत अच्छे वक्ता है—उनके गुन-गुन स्वर से मेरा सर्वांग-शीतल हो जायगा—मेरे ही फूल के वृक्षों के फूलों की पंखुड़ियों को तोड़-कर मेरे ही कानों के पास गुन-गुन ? मेरा क्रोध असह्य हो उठा, मै ताड़ का पंखा हाथ में लिये हुये भ्रमर के साथ युद्ध करने को तैयार हो गया। तब मैं घूर्णन, विघूर्णन व संघूर्णन प्रभृति बहुत प्रकार की वक्र गतियों से ताल वृन्तास्त्र सञ्चालन करने लगा, भ्रमर भी डीन, उड्डीन, प्रडीन, समा-डीन प्रभृति बहुत प्रकार के कौशल दिखाने लगा। मैं कमलाकान्त चक्रवर्ती पोथा मुक्तावली का रचयिता हूं, किन्तु हाय मनुष्य के पराक्रम ! तुम अति असार हो, तुम सदैव मनुष्यों को धोखा देकर अन्त में अपनी असा-रता सिद्ध करते हो। तुमने जामा के क्षेत्र में चार्लस को, वाटर्लू के मैदान में नेपोलियन को और आज इस भ्रमर समर में कमलाकान्त को वञ्चित कर दिया। मैं जितना ही पंखा घुमाकर वायुउत्पादन करके भ्रमर को उड़ाने लगा, वह दुरात्मा उतना ही घूम घूमकर मेरे माथे—मुण्ड को घेर घेरकर चों बों करने लगा। कभी तो वह मेरे वस्त्रों में छिपकर बादलों की आड़ से इंद्रजित् की तरह रण करने लगा, कभी कुम्भकर्ण-निपाती राम-सेना की तरह मेरी बगल के निचले भाग मे उड़ उड़कर निकल जाने लगा, कभी यह समझकर कि श्यम्पसन् की तरह मेरे बालों में मेरी शक्ति छिपी है मेरे शरत्नीरद निन्दित कुञ्जित श्वेतकृष्ण केशपुंज के बीच प्रवेश करके

भेरी बजाने लगा, दंशन भय से घबराकर मैं युद्ध से भाग चला। भ्रमर साथ साथ दौड़ने लगा। उसी समय चौखट में पैर अटक जाने से कमला-कान्त "पपातधरणीतले ! ! !" इस संसार-समर में महारथी श्री कमला-कान्त चक्रवर्ती, जो दारिद्र्य, चिरकौमार और अफीम प्रभृति से भी कभी पराजित नहीं हुये थे, —हाय। वे इस क्षुद्र पतङ्ग द्वारा पराजित हो गये।

तब धूल्यवलुण्ठित शरीर द्विरेफराज के समीप मैं प्रार्थना करने लगा—"हे द्विरेफसत्तम ! किस अपराध से दुखी ब्राह्मण तुम्हारे निकट अपराधी है कि तुम उसके लिखने-पढ़ने में बाधा पहुँचाने आये हो ? देखो, मैं बङ्ग दर्शन के लिये यह पत्र लिखने बैठा हूं—पत्र लिखने से अफीम आ जायगी—तुम क्यों भन् भन् करके उसमें विघ्न डालते हो ? मैं प्रातःकाल एक बंगला नाटक पढ़ रहा था—तब अकस्मात् उस नाटकीय रोग से ग्रस्त होकर मैं कहने लगा—"हे भृङ्ग ! हे अनङ्ग रङ्ग तरङ्गविक्षेप-कारिन् ! हे हे दुर्दान्त पाषण्ड—भण्ड-चित्तखण्डभण्ड कारिन् ! हे उद्यान विहारिन् ! —तुम क्यों भन् भन् कर रहे हो ? हे भृंग ! हे द्विरेफ ! हे षट् पद ! हे अले ! हे भ्रमर हे भों—भों !"

भ्रमर चुपचाप आकर सामने बैठ गया, तब गुन् गुन् करके गले को दुरुस्त करके वह कहने लगा—मैं अफीम की कृपा से सभी की बातें समझ सकता हूं—मैं स्थिर चित्त से सुनने लगा।

भृङ्गराज कहने लगे—"हे विप्र ! मेरे ऊपर इतनी चोट क्यों ? मैं क्या अकेला ही भन् भन् करने वाला हूं। तुम्हारी इस बंगभूमि में जन्मग्रहण करके मैं भन् भन् न करूंगा तो क्या करूंगा ? बंगाली होकर क्या भन् भन् करना छूट सकता है ? किस बंगाली का भन् भन् करने के सिवा अन्य व्यवसाय है ? तुम लोगों में जो राजा-महाराजा या ऐसे ही और कुछ माथे पर पगड़ी धारण करने वाले 'ड०'* हो गये, उन्होंने बेलवेडि-यर में जाकर भन् भन् करना आरम्भ किया। जो उम्मीदवार होने की इच्छा रखते हैं, वे जाकर दिन-रात राजद्वार पर भन् भन् करते हैं। जो

* बंगला के 'ङ' के माथे पर एक गोलाकार चिह्न रहता है जिसकी तुलना पगड़ी से की गयी है।

केवल एक नौकरी के उम्मेदवार हैं, उनकी भन् भन् आवाज का तो कोई अन्त नहीं है। बंगाली बाबू, जिन्होंने दो-चार अंग्रेजी के वाक्य सीख लिये है, वे उसी क्षण उम्मीदवार बनकर दरख्वास्त या टिकट हाथ में लिये द्वार द्वार पर भन् भन् करते फिरते है—मच्छड़ मक्खियां की तरह—भोजन करते समय, सोते समय, बैठने के समय, खड़े होते समय दिन रात, प्रातःकाल, तीसरे पहर शाम को;—बस वही भन् भन्! जो उम्मेदवारी छोड़कर स्वाधीन वकील बन गये, वे तो सनदी भन् भन् करने वाले! सत्यमिथ्या के सागर-संगम में प्रातःस्नान करके उठ जाने पर वे जहां कहीं देख लेते है, कि कठघरे के अन्दर माथे पर पगड़ी रखे सरकारी कौआ बैठा हुआ है—बड़ा जज, छोटा जज, सब जज, डिप्टो, मुन्सिफ वहीं जाकर ये पेशेवर भन् भन् करने वाले भन् भन् ध्वनि का फव्वारा खोल देते हैं। कोई तो यह समझ लेते हैं कि भन् भन् करने की चोट से देशोद्धार करेंगे। वे सभास्थल में लड़के बूढ़ों को एकत्र करके भन् भन् करते रहते हैं। किसी देश में वृष्टि नहीं हुई है—आओ बाबू भन् भन् करें। बड़ी नौकरी नहीं मिली—आओ बाबू भन् भन् करें; बड़ी नौकरी नहीं मिलती—आओ बाबू भन् भन् करें—रमाकान्त की मा मर गयी है—आओ बाबू उसके स्मरणार्थ भन् भन करें। किसी का तो उसमें भी मन नहीं लगता। वे लोग कागज कलम लेकर, हफ्ते हफ्ते, महीने, महीने, दिन दिन भन भन करते हैं। और तुम भाई साहब, जो मेरी भन् भन् ध्वनि पर इतना क्रोध कर रहे हो, तुम स्वयं क्या करने लगे हो? बङ्गदर्शन सम्पादक के यहां से कुछ अफीम की जुगत लगाने के लिये भन भन ही कर रहे हो। मेरी चीख-पुकार क्या इतनी कटु है?

"तुमसे मैं सच कह रहा हूं, कमलाकान्त! तुम्हारी जाति का भनभनाना अब अच्छा नहीं लगता। देखो, मैं तो छोटा सा पतिंगा हूं। मैं भी केवल भन भन नहीं करता। मधु (शहद) का संग्रह करता हूं और डंक मारता हूं। तुम लोग न तो मधु संग्रह करना जानते हो, और न डंक मारना ही जानते हो, केवल भन भन करते हो! किसी काम में मन नहीं लगाते, केवल रोनी लड़की की तरह दिनरात भन भन करते रहते हो।

जरा बकना-झकना, लिखना-पढ़ना बन्द करके कुछ काम में मन लगाओ —तुम लोगों की श्रीवृद्धि होगी। मधु संग्रह करना सीखो, डंक मारना सीखो। तुम लोगों की रसना की अपेक्षा हमारा डंक श्रेष्ठ है—वाक्य वाणों से मनुष्य नहीं मरता, हमारे डंकों के भय से जीवलोक सदा शङ्कित है। स्वर्ग में इन्द्र का वज्र है, मृत्युलोक में अंग्रेजों की तोपें हैं, और आकाश मार्ग में हमारे डंक हैं। उसे छोड़ो, देखो, नासिका के खुजली-रोग के कारण दूसरे कामों में मन नहीं लगता, जीभ पर दातून से घाव करो—अन्त में काम में मन लग जा सकता है। और केवल भन भन करना अच्छा नहीं लगता।"

यह कहकर भ्रमरराज झटपट उड़ गये।

मैंने सोचा कि यह भ्रमर अवश्य ही विज्ञ पतङ्ग है। यह बात सुनी गयी है कि मनुष्य की ज्योंही पदवृद्धि हो जाती है त्यों ही उसकी गणना विज्ञ व्यक्तियों में होने लगती है। इसलिये द्विपद मनुष्य से चतुष्पद पशु—अर्थात् जिन सब मनुष्यों की पदवृद्धि हो गयी है वे अधिक विज्ञ मनुष्यों में गिने जाते हैं। इस षटपद की हालत—इसको एक नहीं, दो नहीं, छः पैर हैं। अवश्य ही यह व्यक्ति विशेष विज्ञ होगा—इसकी असामान्य पदवृद्धि देखी जाती है। इस विज्ञ पतंग के परामर्श की अव-हेलना मैं कैसे कर सकता हूं। इसलिए आपातत: भनभनाना मैंने बन्द कर दिया—किन्तु मधुसंग्रह की आशा रही। बंगदर्शन पुष्प से अफीम-मधु संग्रह होगा, इसी भरोसे से जी रहा है—

आपका आज्ञापालक

श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती

चतुर्थ संख्या

वृद्धावस्था की कथा

सम्पादक महाशय! अफीम नहीं पहुंची, बहुत कष्ट मिला। आज जो कुछ मैंने लिखा है, वह विस्फारित नेत्रों से लिखा गया है। अपनी

बुद्धि से—अफीम की कृपा से नहीं। मन के एक दुःख की बात मैं लिखूंगा।

वृद्धावस्था की कथा लिखूंगा। लिखने की इच्छा कर रहा हूँ, किन्तु लिखने में समर्थ नहीं हो रहा हूँ, हो सकता है कि यह निदारुण कथा मेरी दृष्टि में बहुत प्रिय हो। अपने मर्मान्तक दुःख का परिचय अपने लिये बहुत प्रिय मालूम होता है, किन्तु मेरे लिखने से पढ़ेगा कौन! जो युवक है, केवल वही पढ़ता है, बूढ़ा कुछ नहीं पढ़ता। सम्भव है, मेरी इस वृद्धावस्था की कथा का पाठक न मिलेगा।

इस कारण मैं यह नहीं कह सकता कि वृद्धावस्था की बातें मैं ठीक लिख सकूँगा। वैतरणी की तरंगों से टकरा रहे जीवन के उस अन्तिम सोपान पर अभी मैंने पैर नहीं रखा है, आज भी उस पार जाने का महसूल जमा नहीं किया गया है। मन ही मन मुझे यही विश्वास है कि वह दिन अभी नहीं आया है। किन्तु अब यौवन पर भी मेरा कोई दावा नहीं रह गया, मियादी पट्टे की मियाद पूरी हो गई है। एक तरफ मियाद पूरी हो चली है, किन्तु बकाया वसूल नहीं किया गया। उसके लिए कुछ परेशानी है—तकलीफ है। यौवन का अन्त करके छुटकारा नहीं पा सका हूँ। इसके अतिरिक्त महाजनों का भी मेरे यहाँ कुछ पावना है। अनावृष्टि के दिनों में बहुत उधार लेकर मैंने खाया था, उसको चुका नहीं सका हूं। ऐसी सामर्थ्य नहीं है। इसके अतिरिक्त अब महसूल जुटाने का समय आ गया। अपने ऐसे दुःख के समय की कुछ बातें मैं कहूंगा, तुम लोग यौवन का सुख छोड़कर क्या एक बार न सुनोगे?

पहले असल बात का निर्णय कर लिया जाय-मैं क्या वृद्ध हूं? मैं अपनी ही बात कह रहा हूँ, ऐसा मत सोचिये—मैं वृद्ध हूं, अथवा मैं युवक, दोनों में से एक हूँ, यह स्वीकार करने को मैं प्रस्तुत हूं, किन्तु जिनकी अवस्था कुछ उभय प्रकार की है, जिनकी परछाईं पूरब की ओर लटक गयी है, उन्हीं से मैं पूछता हूं, निर्णय करके देख तो लीजिये, आप क्या वृद्ध हैं? आपके केश सम्भवतः अनिन्द्य भ्रमरवत् कृष्ण हैं, सम्भवतः आज भी सभी दाँत अविच्छिन्न मुक्तामाला को भी लज्जित करने वाले हैं, सम्भवतः

आपकी निद्रा अभीतक ऐसी गहरी है कि दूसरे विवाह की पत्नी भी उसे तोड़ नहीं सकती,—तथापि हो सकता है कि आप बूढ़े हों। अथवा आपके केश सफेद्-काले के मिश्रण से गङ्गा-यमुना हो गये हैं, दशन-मुक्ता पंक्ति टूट गयी है, दो एक मोती खो गये हैं—निद्रा नेत्रों के लिये प्रतारणामात्र है, तथापि आप युवक हैं। तुम कहोगे, इसका अर्थ है—"अवस्था से कोई विज्ञ नहीं होता विज्ञ होता है ज्ञान से।" यह बात नहीं है। मैं विज्ञता की बात नहीं कह रहा हूँ, प्राचीनता की बात कह रहा हूं। प्राचीनता वयःक्रम का ही फल है, और किसी का नहीं। धातु विशेष से कुछ तारतम्य हो जाता है कोई चालीस में बूढ़ा हो जाता है, कोई बयालीस में युवक रहता है। किंतु तुम कभी यह न देखोगे कि वयःक्रम का अधिक तारतम्य होता है। ज पैंतालीसवें में युवक कहलाना चाहता है, वह या तो यमराज के भय से बहुत डरा हुआ है, अथवा उसने तीसरी बार विवाह किया है। जो पैंतीस वर्ष की उम्र में बूढ़ा कहलाना चाहता है, वह या तो बूढ़े को ही प्यार करता है, अथवा वह पीड़ित है, अथवा किसी बड़े दुःख से दुःखी है।

किन्तु यह आधा रास्ता पार करके पहली बार के चशमे को हाथ में लेकर रूमाल से पोंछते-पोंछते ठीक बताया जा सकता है कि मैं वृद्ध हो गया हूँ या नहीं? सम्भवतः हो भी गया हूं। सम्भवतः नहीं हुआ हूं। मन ही मन यह भरोसा है कि नेत्रों में जरा दोष आ जाय, दो चार बाल पक जायँ। अभी मैं बूढ़ा नहीं हुआ हूं। कहाँ, कुछ भी तो वृद्ध नहीं हुआ है? यह चिरप्राचीन भुवनमण्डल तो आज भी नवीन है। मेरी प्रिय कोयल का स्वर पुराना नहीं हुआ है। मेरे सौन्दर्य मिश्रित, जड़े हुए हीरे की झलक वाले गङ्गा के तरंग-नृत्य तो पुराने नहीं हुए हैं। प्रभात की वायु, बकुल-कामिनी की गन्ध, वृक्षों की श्यामलता और नक्षत्रों की उज्ज्वलता, कुछ भी तो पुराना नहीं हुआ —वैसा ही सुन्दर है। केवल मैं पुराना हो गया? मैं इस बात पर विश्वास न करूँगा। संसार में ऊँची हँसी तो आज भी है, केवल मेरी हँसी के दिन बीत गये? संसार में उत्साह, क्रीडा, आमोद आज भी पूर्ववत् बहुत अधिक हैं, केवल मेरे ही लिये नहीं हैं? जगत् प्रकाशमय है, केवल मेरी ही रात्रि आ रही है? सत-

मन कम्पनीकी दूकान पर वज्रपात हो जाय, मैं इस चशमे को फोड़ डालूंगा, मैं वृद्धावस्था को स्वीकार न करूंगा।

तो भी आ जाती है—बचाव नहीं हो सकता। धीरे धीरे, दिन पर दिन वयःचोर आकर इस देहपुर में प्रवेश कर रहा है—मैं मन में जो भी क्यों न सोचूं, मैं बूढ़ा हूं, प्रति निश्वास से यह जान रहा हूं। दूसरे हँसते हैं, मैं केवल ओठों को हिलाकर उनका मन रखता हूं। दूसरे रोते हैं, मैं केवल लोक लज्जा से मुँह फुलाए रहता हूँ—सोचता हूँ, ये लोग यह व्यर्थ ही समय नष्ट क्यों कर रहे हैं ? उत्साह मेरे लिये निरर्थक श्रम है—आशा मेरे लिए आत्मप्रतारणा है। कहाँ, मुझमें तो आशा-भरोसा कुछ भी नहीं है ? कहाँ—हटाओ इसे, जो नहीं है, उसको अब ढूँढने की जरूरत नहीं है।

ढूँढकर देखूं क्या ? जो कुसुमपुञ्ज इस जीवनकानन को प्रकाशित करते थे, वे पथ के किनारे एक एक करके झड़ पड़े हैं। जिन मुखमण्डलों को मैं प्यार करता था, वे एक एक करके अदृश्य हो गये हैं, अथवा धूप से सूखे हुये तीसरे पहर के फूलों की तरह कुम्हला गए हैं। कहाँ, अब इस टूटे-फूटे मन्दिर में, इस परित्यक्त नाट्यशाला में, इस उजड़ी मजलिस में वह उज्ज्वल दीपावली कहाँ है ? एक एक करके वे बुझ गयी हैं। केवल मुख नहीं—हृदय। वह सरल, प्रेम से परिपूर्ण, विश्वास में दृढ़, सौहार्द में स्थिर, अपराध में भी प्रसन्न, वह मित्र हृदय कहाँ है ? नहीं है ! किसके दोष से नहीं है। मित्र का दोष भी नहीं है वयःक्रम के दोष से अथवा यमराज के कोप से।

इससे हानि क्या है ? अकेला आया हूं, अकेला जाऊंगा—इसमें चिन्ता क्या है ? इस लोकालय के साथ मेरी न बन सकी—अच्छा, अब तुम रुक जाओ, इसे समाप्त कर दो। पृथिवि ! तुम अपने नियम से घूमती रहो, मैं अपने इच्छित स्थान को जाता हूं, तुमसे मुझसे सम्बन्ध छिन्न हो गया—इससे हे मृण्मयि ! जड़पिण्ड, गौरवपीड़िते वसुन्धरे ! तुम्हारी भी क्षति क्या है ? मेरी भी क्षति क्या है ! तुम अनन्तकाल शून्य पथ में घूमोगी, मैं अब थोड़े दिन ही घूमूंगा। उसके बाद तुम्हारे ललाट

पर राख का तिलक लगाकर जिनके पास रहने में सभी ज्वालाएं ठंढी हो जाती हैं, उनके पास जाकर, सभी ज्वालाओं को शीतल करूँगा।

तो, एक तरह से यह निश्चय हो गया कि मैं वृद्धावस्था में पहुँच गया हूँ। अब कर्त्तव्य क्या है? "पञ्चाशोर्ध्वे वनंव्रजेत" यह किसी प्रचण्ड मूर्ख का वचन है। फिर वन है कहां? इस उम्र में यह अटारियों से भरी हुई—जनपूर्ण, दूकानों से परिपूर्ण नगरी ही वन है, क्योंकि हे वयस्क पाठक! इनमें से किसी की सहृदयता अब तुम्हारे साथ या मेरे साथ नहीं है। विपत्काल में कोई कोई आकर कह सकते हैं कि—"हे वृद्ध! तुम बहुत देख चुके हो, इस विपत्ति में मैं क्या करूंगा, बता दो—" किन्तु सम्पत्ति के समय में कोई भी न कहेगा—"हे वृद्ध! आज मेरे आनन्द का दिन है, तुम आकर हमारे उत्सव को बढ़ाओ!" वरन् आमोद-प्रमोद के समय वे कहेंगे—"देखो भाई, वह बूढ़ा इसको जान न सके।" तो फिर इस नगरी के अरण्य होने में बाकी क्या रहा?

जहाँ पहले तुम प्यार पाने की आशा रखते थे, वहां अब केवल भय अथवा भक्ति के पात्र बन गये हो। जो पुत्र तुम्हारे यौवनकाल में, अपनी शैशवावस्था में, तुम्हारे साथ एक शय्या पर शयन करके भी अर्ध निद्रितावस्था में ही अपने छोटे हाथों को फैलाकर तुमको ढूँढता रहता था, वही अब लोगों से मौखिक पूछता समाचार है, पिता जी कैसे हैं। दूसरों के लड़के को जिसे सुन्दर देखकर तुमने गोद में उठाकर प्यार किया था, वह अब कालक्रम से वयःप्राप्त हो चुका है, कर्कश कान्ति है, शायद पापिष्ठ है—पृथ्वी का पाप स्रोत बढ़ा रहा है। सम्भवतः तुम्हारे ही प्रति द्वेषभाव रखता है—तुम केवल रोकर कह सकते हो—"इसको मैंने गोद में लेकर, पीठ पर चढ़ाकर दुलार किया था।" तुमने जिसको अपनी गोद में बैठाकर क, ख सिखाया था, वह सम्भवतः लब्धप्रतिष्ठ पण्डित है, तुम्हारी मूर्खता देख कर मनही मन उपहास करता है। जिसकी स्कूल की फीस देकर, जिसे पालपोसकर तुमने शिक्षित बनाया था, वही शायद अब तुमको रुपये उधार देकर तुमसे ही ब्याज खाता है। तुम जिसको सिखाते थे, शायद वही तुमको सिखा रहा है। जो तुम्हारे लिए अग्राह्य था, तुम आज उसके

लिए अग्राह्य बन गये हो। अब अरण्य होने में बाकी ही क्या रहा ?

अन्तर्जगत् को छोड़कर तुम बहिर्जगत् का यह रूप देखोगे। जिस जगह तुमने अपने हाथों से फूलों का उद्यान लगाया था—चुन चुनकर गुलाब, चन्द्रमाल्लिका, अलिया, बिग्नोनिया, साइप्रेस, अरकोरेया लाकर रोपा था, हाथ में फौवारा लेकर स्वयं जलसिंचन किया था, उस जगह देखोगे चने-मटर की खेती हो रही है, हाराधन पोद्दार कंधे पर अंगौछा रखकर, तगड़े २ बैल लिए निर्विघ्न हल चला रहा है—उस हल की फाल तुम्हारे हृदय में मानों प्रवेश कर रही है। जिस अट्टालिका को तुमने युवावस्था में मन ही मन अनेक साध रखकर, बहुत साधों की पूर्ति करके, यत्न के साथ तैयार किया था, जिसमें पलंग बिछाकर नेत्रों से नेत्र, अधरों से अधर मिलाकर इहजीवन के अनश्वर प्रेम का प्रथम पवित्र सम्भाषण किया था, उस गृह को शायद तुम इस अवस्था में देखोगे कि उसकी सभी ईंटें दासू घोष के अस्तबल की रोड़ी के लिये तोड़ी जा रही हैं; उस पलंग के टूटे फूटे अंशों को लेकर कैलासी की मा रसोईदारिन, चावल पकाने की हँडिया में ईंधन की आँच लगा रही है—अब अरण्य का बाकी ही क्या रहा ? सभी ज्वालाओं से बढ़कर ज्वाला यह है कि—मैंने उस यौवनकाल में जिसको सुन्दर देखा था, अब वह कुत्सित है। मेरा प्रिय मित्र, दासू मित्र यौवन के रूप से स्फीतकंठ होकर कबूतर की तरह गर्व के साथ घूमता रहता था, कितनी ही स्त्रियों ने गंगा के घाट पर स्नान करते समय उसको देखकर "नमः शिवाय नमः" कहकर फूल चढ़ाते समय "दासू मित्राय नमः कहकर फूल चढ़ाये हैं। अब उसी "दासूमित्र का गला सूख गया है, बाल पक गए हैं, दाँत टूट गये हैं, चमड़े में झुर्री पड़ गयी हैं, शरीर कृश हो गया है। दासू की जलपान-सामग्री में एक बोतल ब्रांडी और तीन मुर्गियाँ थीं,—अब दासू नामावली के भार से कातर है, थाली में मछली का झोल देने से वह उस थाली को धो डालता है। अब अरण्य का बाकी ही क्या रहा ?

गदा की मा को देखो। जब मेरे उस पुष्पोद्यान में तरङ्गिनी नामक युवती फूल चुराने जाया करती थी, तब ऐसा मालूम होता था मानो

नन्दन कानन से सदेह सपुष्प पारिजात वृक्ष लाकर किसी ने छोड़ दिया है। उसके केशगुच्छों को लेकर उद्यान-वायु क्रीड़ा करती थी, उसके आँचल में काँटे उलझाकर गुलाब का पौधा रसकेलि करता था। और आज गदा की मा को देखो, वह बकबक झकझक करती हुई चावल झाड़ रही है—वह है मलिनवदना, विकट दशना, तीव्र रसना, दीर्घाङ्गी, कृष्णांगी, कृशांगी। उसकी खाल लटकी हुई है, उसके बाल पक गए हैं, बाँहें सूख गयी हैं—गला कर्कश है—वही तरंगिनी यह है। अब अरण्य का बाकी ही क्या रहा!

तो यही निश्चय हुआ, वन में जाना न पड़ेगा। तो मैं क्या करूँगा! हिन्दू शास्त्रों के वशवर्ती होकर कालिदास ने भी सर्वगुणवान रघुगण के लिए बुढ़ापे में मुनिवृत्ति की व्यवस्था की थी। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं—कालिदास ने चालीस पार करके रघुवंश नहीं लिखा। उन्होंने रघुवंश युवावस्था में लिखा और कुमार सम्भव चालीस पार करके लिखा था, इसे मैं दो कविताएं उद्धृत करके दिखा रहा हूं—

प्रथम, अज विलाप में—

"इदमुच्छ्वसितालकं मुखं
तव विश्रान्तकथं दुनोति माम्।
निशि सुप्तमिवैक पङ्कजं
विरताभ्यन्तर षट्पदस्वनम्॥
यह है युवाकाल का रोना।

उसके बाद रतिविलाप में,—

"गत एव न ते निवर्त्तते
स सखा दीप इवानिलाहतः।
अहमस्य दशेव पश्य मा—
मविषह्य व्यसनेन धूमिताम्।"
यह है वृद्धावस्था का रोना।

कुछ भी हो, कालिदास वृद्धावस्था का गौरव समझते थे, यह ठीक है, किन्तु कभी वे वृद्ध के ललाट पर मुनिवृत्ति नहीं लिखते थे। बिस्मार्क,

मोन्टके और फ्रेड्रिक वृद्ध थे; वे लोग यदि मुनिवृत्ति अवलम्बन कर लेते तो जर्मनी की एक जातीयता कहाँ रहती ? टियर थे वृद्ध। टियर यदि मुनिवृत्ति ग्रहण कर लेते तो फ्रान्स की स्वाधीनता और साधारण तन्त्रावलम्बन कहाँ रहता; ग्लैडस्टोन और डिज़रेली बूढ़े थे—वे यदि मुनिवृत्ति अवलम्बन करते तो पार्लमेण्ट का रिफार्म और आयरिश चर्च डिसेष्टाब्लिशमेण्ट कहाँ रहता ?

वृद्धावस्था ही विषय-ईषणा का समय है। मैं अन्तदन्तहीन त्रिकाल के बूढ़े की बात नहीं कह रहा हूँ। वे लोग द्वितीय शैशव में उपस्थित हैं। जो लोग अब युवा नहीं हैं इसी कारण बूढ़े हैं, मैं उन लोगों की बात कह रहा हूँ। यौवन में कर्म का समय तो अवश्य रहता है, किन्तु उस समय काम अच्छा नहीं होता। पहले तो बुद्धि अपरिपक्व रहती है, उसके अतिरिक्त राग द्वेष, भोगासक्ति और स्त्रियों के अनुसन्धान से वह सतत हीन प्रभ रहती है। इस कारण मनुष्य यौवन में साधारणतः कार्य करने में सामर्थ्यवान नहीं रहता। यौवनातीत का मनुष्य बहुदर्शी, स्थिरबुद्धि, लब्धप्रतिष्ठ होता है, भोगासक्ति के अधीन वह नहीं रहता, इसलिए वही है काम करने का समय। इस कारण मेरा परामर्श यह है कि बूढ़ा हो गया हूँ इस कारण कोई अपना कार्य त्यागकर मुनिवृत्ति का भाग न दिखावें। बुढ़ापे में भी विषय-चिन्तन करना चाहिये।

तुमलोग कहोगे, यह बात कहने की आवश्यकता नहीं है, कोई भी जीवन और शक्ति के रहते विषयचेष्टा त्याग नहीं करते। माता का दूध पीते रहने के समय से लेकर वसीयतनामा लिखने के समय तक बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी केवल विषयों का अन्वेषण करने में व्यस्त है। सच है, किन्तु मैं वृद्ध को विषय की खोज में लगाना नहीं चाहता। युवावस्था में तुमने जो काम किया है, वह अपने लिए था; उसके बाद युवावस्था के बीत जाने पर, तुम जो काम करोगे, वह दूसरों के लिए होगा। यही मेरा परामर्श है। तुम यह मत सोचना कि आज भी मैं अपना कामही पूरा न कर सका—दूसरों का काम क्या करूँ? अपना काम पूरा नहीं होता। यदि मनुष्य जीवन एक लाख वर्ष का होता तो भ

अपना काम पूरा नहीं होता—मनुष्य की स्वार्थपरता की सीमा नहीं है—अन्त नहीं है। इसीलिए यह कहता हूं कि बुढ़ापे में अपना काम पूरा हो गया, यह सोचकर तुम परहित करने में लग जाओ। यही वृत्ति यथार्थ मुनिवृत्ति है। यही मुनिवृत्ति ग्रहण करो।

जो तुम यह कहो कि बुढ़ापे में भी यदि चाहे अपने लिए और चाहे दूसरों के लिए, दुनिया के कामों में ही लगा रहूंगा तो परकाल के लिए काम ईश्वरचिन्तन कब करूंगा? मैं यह कहता हूं कि शैशव से परकाल के लिए काम करते रहना चाहिये, शैशव से जगदीश्वर को हृदय में प्रधान स्थान देना चाहिए। जो काम सब कामों के ऊपर है, उसको बुढ़ापे के लिए तुम क्यों डाले रक्खोगे? शैशव में, युवावस्था में, बुढ़ापे में—सब समय ही ईश्वर को पुकारते रहना चाहिये। इसके लिए किसी विशेष अवसर का प्रयोजन नहीं है—इसके लिए किसी दूसरे काम की क्षति नहीं होगी। वरन् तुम यह देखोगे कि ईश्वरभक्ति के साथ साथ होने पर सभी कार्य मङ्गलप्रद, यशस्कर और परिशुद्ध होते हैं।

मैं यह समझ रहा हूं कि बहुतों को ये सब बातें अच्छी नहीं लग रही हैं। वे लोग इतनी देर तक यही कह रहे हैं, तरङ्गिनी युवती के बारे में बातें हो रही थीं—होते होते फिर ईश्वर का नाम क्यों? अभी अभी तुम वृद्धावस्था की ढेंकी लगाकर बंगदर्शन के लिए धान कूट रहे थे—फिर यह शिवजी का गीत क्यों? दोष हो गया है, यह मैं स्वीकार करता हूं, किन्तु मनही मन प्रतीत होता है कि सभी कामों में कुछ कुछ शिव जी का गीत अच्छा है।

अच्छा हो या न हो, प्राचीन के लिए अन्य उपाय नहीं है। तुम्हारी तरंगिनी, हेमांगिनी, सुरंगिनी कुरंगिनी के दल हम लोगों की तरफ न आवेंगे। तुम्हारे मिन्ह कांट, स्पेन्सर, फुवर, वर्क मनोरंजन नहीं कर सकते। तुम्हारा दर्शन, विज्ञान, सभी असार है—सभी अन्धों का शिकार है। आज की इस वर्षा के दुर्दिन में, आज इस कालरात्रि के अन्तिम कुलग्न में—इस नक्षत्रहीन अमावस्या निशा के मेघागम में—मेरी अब कौन रक्षा करेगा? इस संसार नदी की उत्तप्त वालुकामय रेती में—प्रखर-

वाहिनी वैतरिणी के आवर्त्तभीषण उपकूल में इस दुस्तर पारावार की प्रथम तरंगमाला की टक्कर में अब मुझे कौन बचावेगा ? अतिवेग से प्रबल वायु बह रही है—अन्धकार ! प्रभो ! चारो तरफ ही अन्धकार है ! मेरी यह छोटी सी नैया दुष्कृत के बोझ से बहुतभारी हो गयी है ! मुझे कौन बचावेगा ?

पञ्चम संख्या

कमलाकान्त की विदाई

सम्पादक जी !

मैं विदा हो रहा हूँ, अब न लिखूंगा । पटी नहीं । आपके साथ नहीं पटी, पाठकों के साथ नहीं पटी, इस संसार के साथ मेरी नहीं पटी । खास अपने साथ अब मेरी नहीं पटती । अब क्या लिखना होगा ? बेसुर में क्या यह बाँसुरी बजती है ? बाँसुरी बजने बजने को होती है, तो भी नहीं बजती —बाँसुरी फट गयी है । फिर तो बजा देखूं, हृदय की बाँसुरी ! हाय ! तू क्या अब उस तरह बजना जानती है ? अब क्या वह तान तुझे याद है ? क्या तू पहले की ही तरह है या मैं वही हूं ? तू तो घुन लगी हुई बाँसुरी है—मुझमें भी घुन लग गया है—मुझमें घुन लगे हैं, यह क्या खाक, मैं जानता हूं । मेरा वह स्वर नहीं है—अब मैं बजाऊंगा क्या ? अब वह रस नहीं है, सुनेगा कौन ? एक बार बजा दे तो देखूं । हृदय ! इस जगत् संसार में—बधिर अर्थचिन्ता में व्यस्त परशान इस मूढ़ जगत्-संसार में, उसी प्रकार फिर मन की छिपी हुई बातें कह तो देखूं ? कहने से क्या कोई सुनेगा ? उस समय जवानी थी।कितने दिन बीत गये,जब मैंने पोथा लिखा था—अब उस उम्र, उस रस के बिना क्या कोई बात सुनेगा ? अब वह वसन्त नहीं है—अब टूटे-फूटे गले की कोयल का कुहूरव क्या कोई सुनेगा ?

भाई, अब बातों की जरूरत नहीं है—अब बजने की जरूरत नहीं है टूटे फूटे बाँस में मोटी आवाज में अब कुक्कुररागिनी अलापने की जरूरत

नहीं है। अब हँसने से कोई न हँसेगा—रोने से बल्कि लोग हँसेंगे। प्रथम अवस्था की हँसी-रुलाई में सुख है—लोग साथ साथ हँसते हैं रोते हैं, अब हँसी-रुलाई ! छिः ! केवल लोगों में हँसी फैलाने की बात।

हे सम्पादक कुलश्रेष्ठ ! आपको मैं सच कहता हूँ—कमलाकान्त में अब वह रस नहीं है। मेरा वह नसी बाबू नहीं है—अफीम का अभाव है—वह प्रसन्न कहाँ है मैं नहीं जानता, उसकी वह मंगला गाय कहाँ है मैं नहीं जानता। सच ही है, उन दिनों भी अकेला था, इस समय भी अकेला हूँ, किन्तु उन दिनों मैं अकेला ही एक हजार के बराबर था—अब मैं अकेला आधा हूँ। किन्तु अकेले को इतना बन्धन क्यों ? जिस चिड़िया को मैंने पाला था, वह न जाने कब मर गयी है—उसके लिए मैं आज भी रोता रहता हूँ, जिस फूल को मैंने खिलने दिया था—वह कब का सूख गया है, उसके लिए मैं आज भी रोता रहता हूँ। जिस जलविम्बको एक बार जलस्रोत में सूर्यकिरणों से चमकता हुआ मैंने देखा था, उसके लिए मैं आज भी रोता रहता हूं। कमलाकान्त भीतर ही भीतर हृदय से सन्यासी है—उसको इतने बन्धन क्यों ? यह शरीर सड़ने लगा; खाक-पत्थर मन के बन्धन क्यों नहीं सड़ते ? मकान जल गया—आग क्यों नहीं बुझती ? पोखर सूख चला—इस कीचड़ में कमल क्यों खिलता है ? आँधी थम गई है, दरिया में तूफान क्यों है ? फूल सूख गया है—अब भी गन्ध क्यों है ? सुख चला गया—आशा क्यों है ? स्मृति क्यों है ? जीवन क्यों है ? प्रेम चला गया—यत्न क्यों है ? प्राण चले गये, पिण्डदान क्यों होता है ? कमलाकान्त चल गया है, वह कमलाकान्त जो चन्द्रमा से ब्याह करता था, कोयल के साथ गाता था, फूलों का विवाह कराता था, अब फिर उसके लिए अफीम का हिस्सा क्यों ? बाँसुरी फट गयी है, फिर स, ऋ, ग म क्यों ? प्राण चला गया है भाई, फिर निश्वास क्यों ? सुख चला गया है भाई, फिर रोना क्यों ? तो भी मैं रोता हूँ। जन्म लेने के साथ ही मैं रोने लगा था। रोते ही मरूँगा। अब मैं रोऊँगा, लिखूंगा नहीं।

अनुगत, स्वगत और विगत
श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती

कमलाकान्त की जबानबन्दी

खुशनबीस जूनियररचित

उस अफीमची कमलाकान्त का समाचार बहुत दिनों से मुझे नहीं मिला। मैंने बहुत खोज की, हाल में अकस्मात् एक दिन उसको मैंने फौजदारी अदालत में देख पाया। मैंने देखा कि ब्राह्मण एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ है, पेड़ के तने पर उठंगा हुआ है, आँखें बन्द करके नारियल में तमाखू पी रहा है। मैं समझ गया, और कुछ नहीं, ब्राह्मण ने लोभ में पड़ कर किसी की डिबिया से अफीम चुरा ली है, कोई दूसरी सामग्री कमलाकान्त न चुरावेगा, यह मैं निश्चितरूप से जानता हूँ। पास ही एक काली पोशाक वाला कान्स्टेबिल दिखाई पड़ा। मैं खड़ा नहीं हुआ। कौन जाने, कहीं कमलाकान्त जमानतदार होने को न कह दे। दूर रहकर मैं देखने लगा कि मामला क्या है?

कुछ देर के बाद कमलाकान्त की पुकार हुई। तब एक सिपाही रूल घुमाता हुआ उसको अपने साथ इजलास में ले गया। मैं पीछे पीछे गया। खड़े होकर दो चार बातें सुन कर क्या मामला है, यह समझ पाया।

इजलास की प्रथा के अनुसार मचान के ऊपर हाकिम विराज रहे हैं। हाकिम एक देशी धर्मावतार हैं—पद और गौरव से डिप्टी हैं। कमलाकान्त अभियुक्त नहीं है—वह है साक्षी। मुकदमा है गाय की चोरी का। फरियादी है वह प्रसन्न ग्वालिनी।

कमलाकान्त को साक्षी के कठघरे में पहुँचाया गया।

तब कमलाकान्त मृदु मृदु हंसने लगा। चपरासी ने धमकाया—हंसते क्यों हो?

कमलाकान्त ने हाथ जोड़कर कहा—"भैया, किसके खेत का धान मैंने खाया है कि मुझे इसके भीतर तुम लोगों ने ठूस दिया?

चपरासी महाशय बात समझ न सके। दाढ़ी फटकार कर बोले—'मजाक की जगह यह नहीं है। हलफनामा पढ़ो।

कमलाकान्त ने कहा—"पढ़ा दो न भाई।"

एक मुहर्रिर तब हलफनामा पढ़ाने लगा। उसने कहा—"कहो मैं परमेश्वर को प्रत्यक्ष जानकर —"

कमलाकान्त—(साश्चर्य) क्या कहूँ ?

मुहर्रिर—सुनाई नहीं पड़ता ?—परमेश्वर को प्रत्यक्ष जानकर—।

कमलाकान्त—परमेश्वर को प्रत्यक्ष जानकर। कैसा गजब है।

हाकिम ने देखा, साक्षी किसी तरह की गड़बड़ी मचा रहा है। उन्होंने पूछा—"गजब क्या ?"

कमला०—परमेश्वर को प्रत्यक्ष जान गया हूँ, यह बात कहनी पड़ेगी !

हाकिम—हानि क्या है ? हलफनामे के फारम में ही यही है।

कमला०—हुजूर सुविचारक हैं जरूर। किन्तु एक बात क्या कहूँ ? गवाही देते देते दो-एक झूठ बोल भी सकता हूँ, किन्तु शुरू में ही एक बड़े झूठ से बात शुरू करूँ, यह क्या अच्छा है ?

हाकिम—इसमें झूठी बात क्या है ?

कमलाकान्त ने मन ही मन कहा—"उतनी बुद्धि रहती तो क्या तुम्हारी यह "पदवृद्धि" होती ? प्रकट रूप से बोला—"धर्मावतार, मुझे कुछ कुछ ऐसा ही मालूम हो रहा है कि परमेश्वर ठीक प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। अपनी आँखों के दोष से हो या और किसी कारण से हो, आजतक कभी मैं परमेश्वर को प्रत्यक्ष न देख सका। आपलोग शायद कानून का चश्मा नाक पर रखकर उनको प्रत्यक्ष देख सकते हैं—किन्तु मैं जब कि उनको इस कमरे के अन्दर प्रत्यक्ष नहीं पा रहा हूँ—तब किस तरह कहूँ कि परमेश्वर को प्रत्यक्ष जानकर—"

फरियादी के वकील चिढ़ गये। उनके उस मूल्यवान् समय को, जो मिनट मिनट पर रुपया पैदा करता है, यह दरिद्र साक्षी नष्ट कर रहा है। वकील ने तब गरम होकर कहा—"साक्षी महाशय। Theological Lecture ब्रह्मसमाज के लिए छोड़ रखना क्या अच्छा न होगा ? यहाँ कानून के अनुसार चलने के लिए अपना मन स्थिर कीजिये।"

कमलाकान्त उनकी तरफ घूम गया। मुसकुराकर बोला—"मालूम होता है, आप वकील हैं।"

वकील—(हँसकर) कैसे पहचान गये ?

कमला०—बड़ी आसानी से। मोटी चेन और मैला शमला देखकर। तो महाशय जी, आपके लिए यह Theological Lecture नहीं है। आपलोग परमेश्वर को प्रत्यक्ष देखते हैं, जब मुवक्किल आ जाता है, यह मैं स्वीकार करता हूँ।

वकील ने रोष से उठकर हाकिम से कहा—"I ask the protection of the court against the insult of this witness."

हाकिम ने कहा—"oh Baboo, the witness is your own witness, and you are at liberty to send him away if you like."

अब कमलाकान्त को विदा कर देने से वकील साहब का मुकद्मा प्रमाणित नहीं होता, इसलिए वकील साहब चुप होकर बैठ गये। कमलाकान्त ने सोचा—यह हाकिमजाति भ्रष्ट है—अपने दल के लोगों की तरह नहीं है।

हाकिम ने यह दशा देखकर मुहर्रिर को आदेश दिया कि "उस शपथ के प्रति साक्षी को objection है। उसको simple affirmation दे दो।"

तब मुहर्रिर ने कमलाकान्त से कहा—"अच्छा, इसे छोड़ो। कहो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कहो।

कमला०—क्या प्रतिज्ञा कर रहा हूँ, यह जानकर ही प्रतिज्ञा करना क्या अच्छा न होगा ?

मुहर्रिर ने हाकिम की तरफ देखकर कहा—"धर्मावतार, साक्षी बहुत ही बैसा है।"

वकील साहब ने कहा—'very obstructive.'

कमलाकान्त—(वकील से) सादे कागज पर दस्तखत कर देने की प्रथा अदालत के बाहर चलती है यह मैं जानता हूँ—भीतर भी क्या चल सकेगी !

वकील—सादे कागज पर कौन तुम्हारा दस्तखत ले रहा है ?

कमला०—क्या प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी, यह विना जाने प्रतिज्ञा करना, और कागज पर क्या लिखा है, यह न देख कर दस्तखत कर देना एक ही बात है।

हाकिम ने तब मुहर्रिर को आदेश दिया कि 'पहले इसे प्रतिज्ञा सुना दो—गोलमाल की जरूरत नहीं है।" मुहर्रिर ने तब कहा, 'सुनो, तुमको कहना पड़ेगा कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जो गवाही दूँगा, वह सच होगी, मैं कोई बात छिपाऊंगा नहीं, सत्य के अतिरिक्त और कोई बात न कहूँगा।"

कमला०—ओं मधु मधु मधु।

मुहर्रिर—यह क्या ?

कमला—प्रतिज्ञा कराइये, मैं करता हूँ।

कमलाकान्त ने तब फिर कोई गड़बड़ी न मचाकर प्रतिज्ञा को पढ़ा। तब उससे जिरह करने के लिए वकील साहब उठ पड़े। कमलाकान्त से लाल आँखें तरेरकर बोले—'अब बदमाशी मत करो—जो मैं पूछता हूँ, उसका सच सच उत्तर दो, फिजूल बात छोड़ दो।'

कमला०—आप जो कुछ पूछेंगे, वह मुझे कहना पड़ेगा ! और कुछ मैं न कह सकूंगा ?

वकील—नहीं।

कमलाकान्त ने तब हाकिम की तरफ घूमकर कहा—फिर भी मुझसे आपने प्रतिज्ञा करायी है कि कोई बात छिपाऊंगा नहीं। धर्मावतार, बे-अदबी माफ करें। मुहल्ले में आज एक धार्मिक नाटक होने वाला है, सुनने की इच्छा थी, वह साध इसी जगह मिट गयी। वकील साहब संचालक हैं। मैं नाटक-मण्डली का पात्र हूँ, जो कुछ वह बोलने को कहेंगे वही बोलूंगा, जो न बोलने को कहेंगे, उसे न कहूँगा, जो बात न बोलने दीजियेगा, वह इस कारण छिपी रह जायगी। प्रतिज्ञाभंग का अपराध माफ हो।'

हाकिम—जो कुछ आवश्यक समझ में आजाय, वह पूछे न जाने पर भी कह सकते हो।

कमलाकान्त ने तब सलाम करके कहा—'बहुत खूब ।'

वकील ने तब जिरह शुरू की—'तुम्हारा नाम क्या है ?'

कमला०—श्री कमलाकान्त चक्रवर्ती ।

वकील—तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

कमला—जवानबन्दी का प्रारम्भिक अनुष्ठान होता है क्या ?

वकील ने गरम होकर कहा—'हुजूर, यह सब contempt of court है (अदालत का अपमान है) ।'

हुजूर वकील की दुर्दशा देखकर कुछ बहुत नाखुश नहीं थे । बोले—"आपका ही तो साक्षी है ।' इसलिए वकील ने फिर कमलाकान्त की तरफ घूमकर कहा—'बताओ, बताना पड़ेगा '

कमलाकान्त ने पिता का नाम बता दिया । वकील ने तब पूछा—तुम कौन जाति हो ?

कमला०—मैं क्या एक जाति हूँ ?

वकील—तुम किस जाति के हो ?

कमला०—मैं हिन्दू जाति का हूँ ।

वकील—ओः, कौन वर्ण ?

कमला०—घोरतर कृष्ण वर्ण ।

वकील—दूर हो, Nonsense । यह साक्षी भी अजीब है ? पूछता हूँ, तुम्हारी जाति है ?

कमला—जाति को कौन नष्टकर सकता है ?

हाकिम ने देखा, वकील की बातों से काम न बनेगा । उन्होंने कहा—'ब्राह्मण, कायस्थ, कैवर्त, हिन्दुओं में बहुत सी जातियाँ हैं, जानते हो, तो तुम उनमें से किस जाति में हो ?'

कमला०—धर्मावतार ! इस वकील की धृष्टता आप देख रहे हैं, मेरे गले में जनेऊ है, नाम बता चुका हूँ चक्रवर्ती—इससे भी वकील यह न समझ सके कि मैं ब्राह्मण हूँ, यह मैं किस तरह जान जाऊँ ?

हाकिम ने लिख लिया, 'जाति ब्राह्मण । तब वकील ने पूछा—'तुम्हारी उम्र कितनी है ?'

इजलास में एक दीवार-घड़ी थी—उसकी तरफ देखकर हिसाब लगाकर कमलाकान्त ने कहा—'मेरी उम्र है ५१ वर्ष, दो मास, तेरह दिन, चार घंटे, पाँच मिनट—'

वकील—कैसी मुसीबत है! घंटा मिनट तुमसे कौन पूछता है?

कमला०—क्यों, अभी ही तो आपने प्रतिज्ञा करायी है कि कोई बात न छिपाऊँगा।

वकील—तुम्हारी जो इच्छा हो, वही करो, मैं तुमसे पार नहीं पा सकता। तुम्हारा निवास कहाँ है।

कमला०—मेरा कोई निवास नहीं है।

वकील—पूछता हूँ, मकान कहाँ है?

कमला०—मकान की बात दूर रही, मेरी अपनी एक कोठरी भी नहीं है।

वकील—तो तुम कहाँ रहते हो?

कमला०—जहाँ तहाँ, इधर-उधर।

वकील—कोई एक अड्डा तो है?

कमला०—था, जब नसी बाबू थे, अब कहीं नहीं है।

वकील—इस समय तुम कहाँ ठहरे हो?

कमला०—क्यों, इसी अदालत में।

वकील—कल तुम कहाँ थे।

कमला०—एक दूकान में।

हाकिम ने कहा—'अब बकझक करने कराने की जरूरत नहीं है। मैं लिख लेता हूँ, निवास नहीं है। उसके बाद।

वकील—तुम्हारा पेशा क्या है?

कमला०—मेरा पेशा क्या! मैं क्या वकील हूँ, या वेश्या हूँ कि मेरा पेशा हो?

वकील—पूछता हूँ, खाते हो क्या करके?

कमला०—भात के साथ दाल मिलाकर, दायें हाथ से कौर उठाकर मुँह में डालकर निगल जाता हूँ।

वकील—वह दाल-भात आता कहाँ से है?

कमला०—भगवान् के देने से ही मिल जाता है, नहीं तो, नहीं मिलता।

वकील—कितना कमाते हो ?

कमला०—एक पैसा भी नहीं।

वकील—तो क्या चोरी करते हो ?

कमला०—ऐसा होता तो इसके पहले ही आपका शरणागत हो जाना पड़ता। आपको कुछ हिस्सा भी मिलता।

वकील ने तब यह दायित्व छोड़कर हाकिम से कहा—"मैं यह साक्षी नहीं चाहता। मैं इसकी जबानबन्दी नहीं करा सकता।"

वादिनी प्रसन्न ने वकील की कमर पकड़ ली। बोली—"इस साक्षी को छोड़ा न जायगा। यह बामन सच बात कहेगा, यह मैं जानती हूँ—यह कभी झूठ नहीं बोलता। उससे तुम लोग पूछना नहीं जानते—इसी लिए वह ऐसा कर रहा है। उस बामन का पेशा क्या होगा ? वह इस घर में, उस घर में जाकर खाता फिरता है। उससे पूछ रहे हो, उपार्जन क्या करते हो ! वह क्या बतावे ?"

वकील ने तब हाकिम से कहा—"लिख लीजिये, पेशा भिक्षा।"

इसपर कमलाकान्त क्रुद्ध हो गया, बोला,—क्या ? कमलाकान्त चक्रवर्ती भिक्षा से जीविका अर्जन करता है ? मैं मुक्तकंठ से शपथ खाकर कहता हूँ, मैं कभी किसी से एक पैसा भी भीख नहीं मांगता।"

प्रसन्न अब चुप न रह सकी। उसने कहा—"यह क्या महाराज। क्या कभी अफीम मांगकर तुमने नहीं खायी ?"

कमला०—हट ! बेहूदी, बेवकूफ ग्वाले की लड़की ! अफीम क्या पैसा है ? मैंने कभी एक पैसा भी किसी से भिक्षा में नहीं माँगा है।

हाकिम ने हँसकर कहा—"मैं क्या लिखूं, कमलाकान्त ?"

कमलाकान्त ने नरम होकर कहा—"लिखिये, पेशा है ब्रह्मभोज का निमंत्रणग्रहण।" सभी हँस पड़े। हाकिम ने वही लिख लिया।

तब वकील साहब मुकदमे पर पहुँच गये। उन्होंने पूछा—तुम क्या फरियादी को पहचानते हो ?"

कमला०—नहीं।

प्रसन्न चिल्ला उठी—"यह क्या महाराज ! हमेशा तुम मेरा ही दूध पीते रहे हो, आज कहते हो कि मैं नहीं पहचानता ?

कमलाकान्त ने कहा—"तुम्हारा दूध-दही मैं नहीं पहचानता, ऐसी बात तो मैं नहीं कहता। तुम्हारा दूध-दही अच्छी तरह पहचानता हूँ। जब मैं देखता हूँ कि एक पात्र दूध में तीन पाव जल है, तभी मैं पहचान जाता हूँ कि, यह प्रसन्न ग्वालिन का दूध है। जब मैं देखता हूँ कि मट्ठे की अपेक्षा दही फीका है, तभी मैं समझ जाता हूँ कि यह प्रसन्नमयी का दही है ! दूध-दही मैं नहीं पहचानता !"

प्रसन्न ने नथ नचाते हुये कहा—"मेरा दूध-दही पहचानते हो, और मुझको नहीं पहचान सकते ?"

कमलाकान्त ने कहा—"किसी स्त्री को कब कोई पहचान सका है, बहन ? विशेषकर अहीर की लड़की की बगल में दूध का बरतन रहे, तो किसके बाप में सामर्थ्य है कि उसे पहचान ले ?

वकील तब फिर सवाल करने लगे—"यह बात समझ में आ गयी कि तुम वादिनी को पहचानते हो—उसके साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध है ?"

कमला०—यह तो बुरी बात नहीं है—इतने गुण न रहने से क्या कोई वकील हो सकता है ?

वकील—तुमने मुझमें कौन गुण देखे ?

कमला०—बामन के लड़के का ग्वाले की लड़की के साथ आप एक सम्बन्ध ढूँढ रहे हैं।

वकील—ऐसा सम्बन्ध क्या नहीं होता ? कौन जाने तुम उसके पोष्य पुत्र हो या नहीं ?

कमला०—उसका नहीं, किन्तु उसकी गाय का तो जरूर हूँ।

वकील—समझ में यह बात आ गयी कि तुम्हारे साथ वादिनी का एक सम्बन्ध है, एकदम साफ कह देने से ही काम हो जाता—इतना परेशान क्यों करते हो ? अब मैं पूछ रहा हूँ, तुम इस मुकद्दमे के बारे में क्या जानते हो ?

कमला०—मैं यह जानता हूँ कि इस मुकदमे में आप वकील हैं, प्रसन्न

फरियादी है, मैं साक्षी हूँ, और यह मुसलमान आसामी है।

वकील—यह बात नहीं, गाय की चोरी के बारे में क्या जानते हो ?

कमला०—गाय की चोरी के बारे में मेरे बाप दादे भी कुछ नहीं जानते। यह विद्या मुझे सिखाइयेगा ? मुझे दूध-दही की बड़ी जरूरत है।

वकील—ओः—पूछता हूँ, गाय की चोरी तुमने देखी है ?

कमला०—एक दिन मैंने देखा था। नसी बाबू की एक बछिया थी—एक मोची—

वकील—कैसी परेशानी है। पूछता हूँ, प्रसन्न ग्वालिन की गाय जब चुरायी गयी, तब उसे तुमने देखा था ?

कमला०—नहीं—चोर में इतनी बुद्धि नहीं थी कि मुझे बुलाकर गवाह रखकर, गाय चुराता, ऐसा होने से तो आपके भी काम की सुविधा होती, और मुझे भी सुविधा होती।

प्रसन्न ने देखा कि, वकील को रुपया देना व्यर्थ ही हुआ। तब अपने हाथ में यह जिम्मेदारी लेने की इच्छा से वकील के कानों में उसने कह दिया—"यह बामन इसमें से किसी बात का साक्षी नहीं है। यह केवल गाय पहचानता है।"

वकील साहब को तब होश हुआ। गरज कर उन्होंने पूछा—"तुम गाय पहचानते हो।

कमलाकान्त ने मीठी हँसी हँसकर कहा—"अहा ! पहचानता तो हूँ जरूर, नहीं तो क्या आपके साथ ऐसा मीठा वार्तालाप मैं करता ?

हाकिम ने देखा, गवाह बहुत ही ज्यादती कर रहा है—उन्होंने कहा—"यह सब छोड़ो।" प्रसन्न ग्वालिनी की साँवली गाय अदालत के सामने मैदान में बँधी हुई थी—दिखाई पड़ रही थी। डिप्टी साहब ने उसकी तरफ देखकर पूछा—"तुम इस गाय को पहचानते हो ?"

कमलाकान्त ने हाथ जोड़कर कहा—कौन गाय धर्मावतार ?

हाकिम ने कहा—"कौन गाय क्या ? एक के सिवा और तो सामने है नहीं।"

कमला०—आप एक ही देख रहे हैं—मैं बहुत सी देख रहा हूँ।

हाकिम ने खिन्न होकर कहा—"तुमको दिखाई नहीं पड़ती—वह साँवली ?"

कमलाकान्त ने साँवली गाय की तरफ न देखकर वकील के शामले की तरफ देखा। बोला—"यह शामला भी चोरी का है क्या ?

कमलाकान्त की दुष्टता हाकिम अब सह न सका। उसने कहा—तुम अदालत के कामों में बहुत बाधा डाल रहे हो—कन्टेम्ट आव कोर्ट के लिए तुमको पाँच रुपया जुरमाना।"

कमलाकान्त ने जमीन में झुककर सलाम किया, दोनों हाथ जोड़कर कहा—"बहुत अच्छा हुजूर ! जुरमाना वसूली का भार किसके ऊपर है ?"

हाकिम क्यों ?

कमला०—किस तरह वसूल कीजिएगा, उस सम्बन्ध में उनको कुछ उपदेश दूँगा।

हाकिम—उपदेश की जरूरत क्या है ?

कमला०—इहलोक में तो मुझसे जुरमाना वसूल होने की सम्भावना नहीं है—वे परलोक चलने को तैयार हैं या नहीं, यही मैं पूछूँगा।

हाकिम—जुरमाना न दे सकोगे तो जेल भेज दिए जाओगे।

कमला०—कितने दिनों के लिए धर्मावतार ?

हाकिम—जुरमाना न चुकाने पर एक महीने की कैद।

कमला०—दो महीने की सजा नहीं देते ?

हाकिम—अधिक मीयाद की इच्छा क्यों है ?

कमला०—समय कुछ खराब चल रहा है—ब्राह्मणभोजन का निमंत्रण अब पहले जैसा सुलभ नहीं है, जेलखाने में दो महीने के लिए यदि ब्राह्मणभोजन का निमंत्रण मिल जाता, यदि ऐसी व्यवस्था आप करते तो इस गरीब ब्राह्मण का उद्धार हो जाता।

ऐसे मनुष्य को जुरमाना या कैद की सजा देने से क्या होगा ? हाकिम ने हँसकर कहा—"अच्छा, तुम यदि गड़बड़ न करके ठीक बयान दोगे, तो तुम्हारा जुरमाना माफ किया जा सकता है—

उस गाय को तुम पहचानते हो या नहीं।

हाकिम ने तब एक कान्स्टेबिल को आदेश दिया कि गाय के पास जाकर प्रसन्न की गाय दिखा दे। कान्स्टेबिल ने ऐसा ही किया। उदास वकील ने तब फिर पूछा—"उस गाय को तुम पहचानते हो ?

कमला०—वह सींग वाली गाय ? दृढ़ कहिए।

वकील—तुम क्या कहते हो ?

कमला०—मैं कहता हूं, सम्हलावाला—छोड़ो इस बात को—मैं उस सींग वाली गाय को पहचानता हूँ। अच्छी तरह जान-पहचान है।

वकील—वह किसकी गाय है ?

कमला०—मेरी।

वकील—तुम्हारी ?

कमला०—मेरी ही।

राम राम ! प्रसन्न का मुंह सूख गया ! वकील ने देखा, मुकदमा बिगड़ा जाता है। प्रसन्न ने तब तरज-गरज कर कहा—"अरे उल्लू ! गाय तेरी है ?"

कमलाकान्त ने कहा—मेरी नहीं तो किसकी है ? मैं उसका दूध पीता था—उसका दही खाता था—उसका मट्ठा खा चुका हूँ, उसका छेना खा चुका हूँ—उसका माखन खा चुका हूँ—उसका नवनीत खा चुका हूँ। वह गाय मेरी नहीं है, तो क्या तू पालती है इसीलिए तेरे बाप की है ?

वकील इतनी बातें न समझ सके। बोले—धर्मावतार, Witness hostile। permission दीजिए, मैं उससे जिरह करूँगा, उसे क्रास करूँगा।

कमला०—क्या ! मुझे तुम क्रास करोगे ?

वकील—हाँ, करूँगा।

कमला०—नाव में या पुल बाँधकर ?

वकील—यह कैसी बात ?

कमला०—भैया ! कमलाकान्त-सागर को पार करो, इतने बड़े हनुमान् तुम आजतक नहीं हुए।

यह कहकर कमलाकान्त चक्रवर्ती क्रोध से तमतमाता हुआ कठघरे से बाहर नीचे चला आया—चपरासी ने पकड़कर फिर कठघरे में कर दिया। तब कमलाकान्त घबड़ाकर निश्चेष्ट हो गया—बोला—करो भैया क्रास करो।—मैं अगाध समुद्र सा पड़ा हुआ हूं—जिसे इच्छा हो, वही कूद पड़ो—'अपामिवाधारमनुत्तरङ्गम्!' वकील साहब! यह प्रशान्त महा-सागर लहरें नहीं फेंकता, आप स्वच्छन्दता से कूद पड़िये।

वकील ने तब कोर्ट से कहा—"धर्मावतार, दिखाई पड़ता है कि यह व्यक्ति बकवादी है, बकवादी होने के कारण इसका बयान खारिज होगा, इसको बिदा कर दिया जाय।"

हाकिम कमलाकान्त के हाथ से निष्कृति पाने को अपनी रक्षा समझने लगे थे। बिदा करने को तैयार थे। ऐसे ही समय में प्रसन्न ने हाथ जोड़ कर अदालत से निवेदन किया—'यदि हुकुम मिले तो मैं स्वयं उससे दो चार-बातें पूछूँ, उसके बाद विदा करना चाहें तो कर दें।

हाकिम ने कौतूहल में होकर अनुमति दे दी। प्रसन्न ने तब कमलाकान्त की तरफ देखकर कहा—"महाराज! नशा करने का समय हो चुका है न?

कमला०—नशा करने का समय कैसा री बेवकूफ औरत, शास्त्र में कहा है—अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यां नशाञ्च चिन्तयेत्।"

प्रसन्न—अं बं इस समय छोड़ दो—अब नशा खाओगे?

कमला०—दे।

प्रसन्न—अच्छा, पहले, मेरी बात का उत्तर दो—उसके बाद वह होगा।

कमला०—तो फिर तुम जल्दी-जल्दी कहो—जल्दी जल्दी जवाब दूँ।

प्रसन्न—पूछती हूँ, गाय किसकी है?

कमला०—गाय तीन आदमियों की है, गाय प्रथम अवस्था में गुरु जी की है, मध्यावस्था में स्त्री जाति की है, अन्तिम अवस्था में उत्तराधिकारी की है। रस्सी तोड़ने के समय किसी की नहीं है।

प्रसन्न—पूछती हूँ वह साँवली गाय किसकी है।

कमला०—जो दूध पीता है, उसकी है।

प्रसन्न—वह गाय मेरी है या नहीं ?

कमला०—तुम्ह बेवकूफ औरत ने कभी उसका एक बूंद दूध नहीं पिया, केवल बेचकर मरती रही, गाय तेरी हो गई, वह गाय यदि तेरी हो जाय, तो बंगाल बंक का रुपया भी मेरा है। छोड़ दे, औरत! गाय चुरानेवाले को छोड़ दे।—गरीब का लड़का दूध पीकर बच जाय।

हाकिम ने देखा, दोनों बहुत ज्यादती करने लगे हैं। अदालत मछली का बाजार हो गयी है। तब दोनों को धमकाकर अपने हाथ में जिरह का भार उन्होंने ले लिया। पूछा—

प्रसन्न इस गाय का दूध बेचती है ?"

कमला०—जी हाँ।

उसकी गोशाला में यह गाय रहती है ?"

कमला०—वह गाय भी रहती है, मैं भी कभी कभी रहता हूँ।

"वही खिलाती है ?"

कमला०—दोनों को।

वादिनी के वकील ने तब कहा—"मेरा कार्य सिद्ध हो गया—मैं अब उससे पूछना नहीं चाहता।" यह कहकर वे बैठ गए। तब आसामी के वकील उठ खड़े हुए। देखकर कमलाकान्त ने पूछा—"फिर तुम कौन ?"

—आसामी के वकील ने कहा—"मैं आसामी की तरफ से तुमको क्रास करूँगा।"

कमला०—एक आदमी तो क्रास कर गया। अब तुम कुंअर बहादुर आ गये क्या ?

वकील—कुंवर बहादुर कौन है ?

कमला०—राजकुमार को तुम नहीं पहचानते। त्रेतायुग में पहले क्रास किया था पवनाङ्गज महाशय ने। उसके बाद क्रास किया कुंवर बहादुर ने।(*)

वकील—इन बातों को छोड़ो—तुम गाय को पहचानते हो—कैसे पहचानते हो ?

(*) अङ्गद।

कमला०—कभी सींगों से—कभी सम्हले से।

वकील कुपित हो उठे, गरजकर टेबिल पर थपकी लगाकर बोले—"पागलपन छोड़ो—तुम इस गाय को किस चिह्न से पहचान रहे हो?

कमला०—उसकी उस बोली से।

वकील ने हताश होकर कहा,—"Hopeless!" वकील साहब बैठ गए—अब जिरह करने की इच्छा नहीं रही। कमलाकान्त ने विनम्र भाव से कहा—"रस्सी तोड़ते क्यों हो भैया?"

यह देखकर कि वकील अब जिरह न करेंगे, हाकिम ने कमलाकान्त को विदा कर दिया। कमलाकान्त लम्बी साँस लेता हुआ भाग गया। मैंने अपना कुछ काम करके बाहर आकर देखा कि कमलाकान्त हुक्का हाथ में लिए बैठा हुआ है, चारो तरफ लोगों की भीड़ लगी हुई है। प्रसन्न भी वहाँ आ गई है। कमलाकान्त उसका तिरस्कार कर रहा है, तेरी मंगला के स्तनों की शपथ—तेरे दूध के बरतन की शपथ—तेरी मथनी की शपथ, तेरी फंदावाली नथिया की शपथ।

मैंने पूछा—चक्रवर्ती महाशय! वह चोर के लिए अपनी गाय क्यों छोड़ देगी?

कमलाकान्त ने कहा—"पूर्वकाल में महाराज श्येनजित् को एक ब्राह्मण ने कहा था कि "बेटा! गोपस्वामी और चोर इनमें से जो दूध पीता है, वही उसका यथार्थ अधिकारी है। उसके ऊपर कोई दूसरा ममता दिखाता है तो वह उसकी विडम्बना मात्र है।+ यही है भीष्मदेव महाराज का Hindu Law और यही है आजकल के यूरोप का Inter-national Law, यदि सभ्य और उन्नत होना चाहते हो, तो छीनकर खाना पीना। गो शब्द से धेनु ही समझो या पृथ्वी ही समझो, यह तस्करों के लिए भोग्य हैं। सिकन्दर से लेकर रणजीत सिंह तक सभी तस्कर ही इसके लिए प्रमाण हैं। Right of conquest यदि एक Right होता है तो Right of theft क्या एक Right नहीं है? इस कारण, हे प्रसन्न गोपकन्या! तुम कानून के अनुसार काम करो। ऐतिहासिक राजनीति की

+शान्तिपर्व, १७४ अध्याय।

अनुवर्तिनी बनो। चोर के लिए अपनी गाय छोड़ दो।"

यह कहकर कमलाकान्त वहाँ से चला गया। मैंने देखा कि वह एकदम पागल हो गया है।

खुशनवीस जुनियर